इन्दिरा गाँधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

एम.एच.डी.–6
हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास

खण्ड

7

भारतीय आर्य भाषाएँ

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

पाठ्यक्रम निर्माण

इकाई लेखक
25. विश्व की भाषाएँ — प्रो. अन्विता अब्बी
26. भारोपीय परिवार — प्रो. जीनी इंजिनियरी
27. संस्कृत से अपभ्रंश — डा. लालचंद्र द्विवेदी
28. आधुनिक आर्य भाषाएँ — डा. लालचंद्र द्विवेदी

खंड संपादक
प्रो. वी रा. जगन्नाथन
इं.गा.रा.मु.वि.वि., नई दिल्ली

पाठ्यक्रम संयोजक
सुश्री स्मिता चतुर्वेदी
इं.गां.रा.मु.वि.वि., नई दिल्ली

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन)
सा. नि. एवं वि. प्र. इग्नू नई दिल्ली

श्री यशपाल
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
सा. नि. एवं वि. प्र. इग्नू नई दिल्ली

नवम्बर, 2020 (पुनः मुद्रित)

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वद्यिालय के पाठ्यक्रमों के विषय में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली–110068 से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सामग्री निर्माण एवं वितरक प्रभाग द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

मुद्रकः गीता ऑफसेट प्रिंटर्स प्रा. लि., सी–90, ओखला फेज़–1, नई दिल्ली–110020

खंड परिचय : खंड-7

साहित्य के इतिहास के अध्ययन के संदर्भ में भाषा के इतिहास को जानना भी महत्वपूर्ण है। साहित्यिक परंपराएँ जिस तरह से सामाजिक गतिविधियों से जुड़ती हैं उसी तरह भाषा के प्रवाह से भी जुड़ती हैं। उदाहरण के तौर पर भक्ति साहित्य का संबंध ब्रज भाषा से है जिसकी प्रांजलता के कारण गेय पदों के रूप में इस भाषा का कृष्ण भक्ति काव्य में व्यापक उपयोग हुआ है। भाषा और साहित्य के प्रत्यक्ष संबंध को हम आधुनिक युग में देख सकते हैं जहाँ व्यापक जनसंचार और ज्ञान के प्रसार के कारण बोलियों के स्थान पर साहित्यिक भाषा के रूप में खड़ीबोली स्थापित हुई है। यह कह सकते हैं कि खड़ी बोली का आविर्भाव और नवजागरण का उत्थान दोनों एक दूसरे की पूरक गतिविधियाँ हैं। इस उद्देश्य से हम पाठ्यक्रम एम.एच.डी.-6 में 2 खंडों में हिंदी भाषा के इतिहास की विस्तृत चर्चा कर रहे हैं।

खंड-7 और 8 में अंतर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में विश्व की सभी भाषाओं के संदर्भ में हिंदी भाषा के विकास को देखने का यत्न किया गया है। खंड-7 संस्कृत से आधुनिक आर्य भाषाओं और हिंदी के विकास क्रम को प्रस्तुत करता है। खंड-8 में हिंदी की संकल्पना को और उसके विकास को आधुनिक युग में देखने का यत्न किया गया है। इकाई-31 में वर्तमान युग में हिंदी के प्रकार्यों और उसकी भूमिकाओं की चर्चा है।

प्रस्तुत खंड *भारतीय आर्य भाषाएँ* भारत की भाषा स्थिति को पृष्ठभूमि में रखकर संस्कृत से हिंदी के विकास क्रम को प्रस्तुत करता है। हिंदी भारोपीय परिवार की भाषा है। इस परिवार की भाषाओं को बोलने वाले विश्व में सबसे अधिक हैं । हिंदी, अंग्रेजी, रुसी आदि इसी भाषा परिवार में आती हैं। इस प्रकार की जानकारी इस कारण आवश्यक है कि हम व्याकरणिक रचना, शब्दावली, उच्चारण की विशेषताएँ आदि के संदर्भ में इन भाषाओं के अंतः संबंध को पहचानें।

विश्व के 9 या 10 प्रमुख भाषा परिवार हैं जिनमें भारोपीय परिवार के साथ सेमेटिक (अरबी भाषा) और चीनी परिवार आदि प्रमुख हैं। विश्व की इन भाषा परिवारों में चार तो भारत में ही हैं और इनमें से दो परिवार (भारोपीय परिवार और द्रविड परिवार) प्राचीनता और साहित्य की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि परस्पर आदान-प्रदान के कारण इन सब भाषाओं में कई सामान्य विशेषताएँ विकसित हुईं। जैसे तमिल, तेलुगु आदि द्रविड़ भाषाओं ने हिंदी के वर्णमाला और उच्चारण पद्धति को अपनाया। ब्राह्मी लिपि से अपनी लिपि पद्धति विकसित की और संस्कृत भाषा से साहित्यिक परंपरा और शब्दावली विपुल मात्रा में प्राप्त की। संस्कृत भाषा में भी द्रविड भाषाओं के परिवार के कारण कई नये भाषिक तत्व जुड़े जैसे मूर्धन्य ध्वनियों का उच्चारण, शब्दावली जैसे मीन, नीर आदि, रंजक क्रियाएँ। इन सामान्य विशेषताओं के कारण प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक एमन्यू ने भारत को एक **भाषा क्षेत्र** कहा था। भाषिक और साहित्यिक परंपरा की समानता के कारण भारत के भाषा परिवारों की कुछ विशेषताओं की चर्चा करना भी आवश्यक प्रतीत हुआ। इस खंड में विश्व के भाषा परिवार, भारोपीय परिवार, भारतीय भाषा परिवार तथा, भाषा क्षेत्र की संकल्पना की चर्चा की गई है।

संस्कृत से पाली, प्राकृत और अपभ्रंश के रास्ते से आधुनिक आर्य भाषाओं यथा हिंदी, बंगला, मराठी आदि के विकास क्रम के बारे में आपने पहले भी पढ़ा होगा और इस विकास क्रम से आप परिचित होंगे। फिर भी इकाई-27 और 28 में इस विकास क्रम की विस्तृत जानकारी दी गई है जिससे कि आप भारत की साहित्य परंपरा से भी परिचित हो सकें और भाषिक परिवर्तनों के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर सकें।

इस खंड में चर्चित विषयों के संदर्भ में हमने इस पाठ्यक्रम के आलेख संग्रह (विविधा) में कुछ लेख सम्मिलित किये हैं जिससे आप विषय से संबंधित विद्वानों के विभिन्न मत जान सकें। एम.ए. के स्तर पर हम अध्येताओं से अपेक्षा करते हैं कि वे पाठ्यक्रम से बाहर के महत्वपूर्ण ग्रंथों का अध्ययन-अवलोकन करें जिससे उनके ज्ञान में विस्तार हो। इस उद्देश्य से खंड के अंत में कुछ प्रमुख संदर्भ ग्रंथों की सूची दी गई है। ये ग्रंथ आप अपने अध्ययन केन्द्र में या पुस्तकालयों में देख सकते हैं।

इस पाठ्यक्रम की संकल्पनाओं को समझने में कठिनाई हो या आप विस्तृत जानकारी चाहें, तो बी.ए. के हिंदी ऐच्छिक पाठ्यक्रम ई.एच.डी.-6: *हिन्दी भाषा का इतिहास और वर्तमान* का भी अवलोकन करें।

शुभकामनाओं के साथ।

इकाई 25 विश्व की भाषाएँ और भारतीय भाषा परिवार

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य

संसार में बहुत-सी भाषाएँ बोली जाती हैं। इन्हें 9-10 परिवारों में बाँटा जाता है। भारत में ही इनमें से चार परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं। पिछली जन गणनाओं के अनुसार भारत में बोली जाने वाली भाषाओं की कुल संख्या 1650 है। ये सारी भाषाएँ किस रूप में संबंधित हैं? भाषा वैज्ञानिकों ने इन भाषाओं को चार प्रमुख भाषा परिवारों में बाँटा है, जिनमें भारतीय आर्य भाषाएँ और द्रविड प्रमुख हैं। फिर यह देखने का यत्न किया गया है कि इनमें परस्पर क्या संबंध हैं और ये एक दूसरे को कैसे प्रभावित करती हैं।

इस पाठ को पढ़ने के बाद:

- **आप भाषा परिवार की संकल्पना स्पष्ट कर सकेंगे,**
- **संसार के भाषा परिवारों का वर्णन कर सकेंगे,**
- **भारत में उपस्थित चार प्रमुख परिवारों की विशेषताएँ बता सकेंगे,**
- **इन परिवारों की प्रमुख भाषाओं के विवरण दे सकेंगे,**

- इस भाषाओं की प्रमुख विशेषताएँ बता सकेंगे, और
- इनके अंत:संबंध की बात स्पष्ट कर सकेंगे।

25.1 प्रस्तावना

हम सब कोई-न-कोई भाषा बोलते हैं। भाषा मनुष्य मात्र की विशेषता है। भारत में हम कई भाषाएँ बोलते हैं - हिंदी, बांग्ला, तमिल, मणिपुरी आदि। ये सब भाषाएँ परस्पर किस रूप में संबंद्ध हैं?

संसार की भाषाएँ लगभग 4000 हैं, जिन्हें विद्वान 9 परिवारों में वर्गीकृत करते हैं। भाषा की संरचना, शब्दावली, इतिहास आदि से परिवार की संकल्पना मूर्त रूप लेती है। एक परिवार की भाषाओं में कई समान भाषिक तत्व मिलते हैं।

भारत बहुत विशाल देश है। इस देश में ही लगभग 1650 भाषाएँ बोली जाती हैं और संसार के नौ भाषा परिवारों में चार तो भारत में ही विद्यमान हैं। ये हैं - भारोपीय परिवार की आर्य भाषा शाखा, द्रविड भाषा परिवार, आस्ट्रिक परिवार की मुंडा शाखा और तिब्बत-चीनी परिवार की तिब्बत-बर्मी शाखा।

इनमें आर्य भाषाएँ और द्रविड भाषाएँ बोलने वालों की संख्या सबसे बड़ी है और भाषा के महत्व के हिसाब से महत्वपूर्ण हैं। संविधान की अष्टम सूची में जिन 18 प्रमुख भाषाओं का उल्लेख किया गया है उनमें 13 आर्य भाषाएँ हैं, 4 द्रविड भाषाएँ हैं और मणिपुरी तिब्बत-बर्मी परिवार की भाषा है।

इस इकाई में आप भारत के चार प्रमुख परिवारों की भाषाओं की संरचनाओं की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे और इन सब परिवारों की कुछ सामान्य विशेषताओं का भी अध्ययन करेंगे जो इनमें परस्पर आदान-प्रदान के कारण विकसित हुई हैं।

25.2 संसार की भाषाएँ

संसार में कुल कितनी भाषाएँ बोली जाती हैं, यह अनुमान का ही विषय हो सकता है, क्योंकि पूरे विश्व की भाषाओं की विधिवत् गणना संभव नहीं है। अनुमान किया जाता है कि संसार में लगभग 4000 भाषाएँ बोली जाती हैं।

ये सारी भाषाएँ एक जैसी नहीं हैं। इनकी अपनी विशेषताओं के कारण इन्हें अलग-अलग परिवारों में बाँटा जाता है। विश्व में कितने भाषा परिवार हैं? इसमें भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ भाषाओं में कई परिवारों की विशेषताएँ मिलने के कारण इनका वर्गीकरण विवादास्पद है। कह सकते हैं कि संसार में करीब 9-10 भाषा परिवार हैं।

25.2.1 भाषाओं के वर्गीकरण का आधार

भाषाओं के वर्गीकरण के प्रमुख दो आधार हैं:

क) परिवारिक वर्गीकरण (geneological classification)

ख) आकृतिमूलक वर्गीकरण (typological classification)

क) **पारिवारिक वर्गीकरण:** पारिवारिक वर्गीकरण के संदर्भ में अपने भाषा के संदर्भ में माँ, बेटी (जैसे संस्कृत भारतीय भाषाओं की जननी है आदि) आदि शब्द सुने होंगे। ये शब्द जैविक उत्पत्ति के द्योतक नहीं, बल्कि ऐतिहासिक विकासक्रम के द्योतक हैं। यह माना जाता है कि भाषा के मूल तत्व-ध्वनि संरचना, क्रिया संरचना, वाक्य गठन के मूल तत्व, आधारभूत शब्दावली लंबे काल क्रम में बदलते नहीं। उदाहरण के लिए संस्कृत और लैटिन पता नहीं कितने हज़ार साल पहले एक मूल भाषा से अलग हुई होंगी। लेकिन उनकी क्रिया रचना समान है। भ्राता (brother), माता (mater>mother), पिता (pater>father) आदि आधारभूत शब्द आज तक सुरक्षित हैं। इन शब्दों की ध्वनि संरचना में भी साम्य देखा जा सकता है।

ख) **आकृतिमूलक वर्गीकरण:** भाषाओं को उनकी संरचना के आधार पर अलग-अलग वर्गों में बांट जाता है। जैसे संस्कृत भाषा संश्लिष्ट, (synthetic) योगात्मक है, क्योंकि इसमें धातु, प्रत्यय, उपसर्ग आदि से शब्दों की रचना होती है। इसके विपरीत चीनी भाषा अयोगात्मक है, क्योंकि चीनी भाषा में शब्दों के रूप नहीं बदलते। प्रश्लिष्ट भाषाओं में वाक्य के सारे शब्द मिलकर नया ही रूप बनते हैं।

निम्नलिखित रूपात्मक वर्ग द्रष्टव्य हैं :
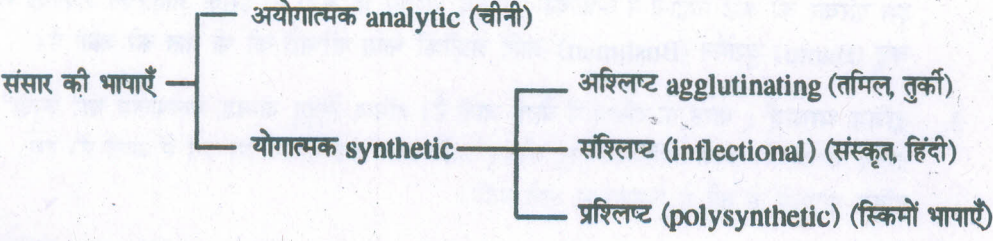
आकृतिमूलक वर्गीकरण पारिवारिक वर्गीकरण के लिए भी आधार है।

25.2.2 संसार के भाषा परिवार

संसार की भाषाओं को (कई अपवादों और विश्लेषण की कठिनाइयों को छोड़कर निम्नलिखित नौ परिवारों में बाँटा जा सकता है:

1. भारोपीय परिवार
2. सामी-हामी परिवार
3. द्रविड़ भाषाएँ
4. आस्ट्रिक
5. फिनो-उग्रिक
6. अल्ताई
7. चीनी-तिब्बती परिवार
8. कांकेशियन भाषा परिवार
9. अमेरिकी भाषाएँ

1. **भारोपीय परिवार :** इस परिवार की भाषाएँ संसार की प्रमुख भाषाएँ हैं जैसे अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, स्पैनिश फ़ारसी, हिन्दी, उर्दू, बांग्ला, पंजाबी आदि। इस परिवार की भाषाएँ बोलने वालों की संख्या विश्व में सबसे अधिक है। हम भारोपीय परिवार के बारे में विस्तार से आगे पढ़ेंगे।

2. **सामी-हामी परिवार (Semitic-Hamitic):** इस परिवार की पाँच शाखाएँ हैं :
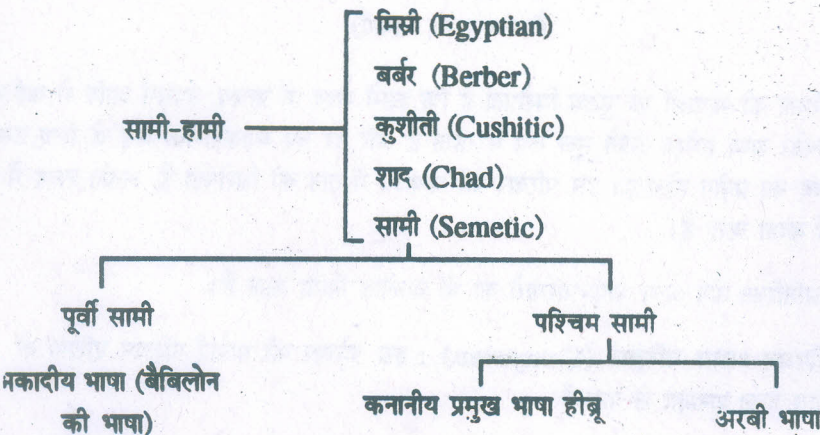
इस वर्ग की भाषाओं की प्रमुख विशेषता शब्द के मूलांश (radical) से शब्द निर्माण की प्रक्रिया है। मूलांक तीन व्यंजनों का होता है और स्वरभेद से इसी से कई शब्द बन जाते हैं। जैसे /क - त - ल/ एक मूलांश है और इससे कत्ल, कातिल, मक्तूल आदि शब्द बनते हैं।

हीब्रू की अपनी लिपि थी जिसे कीलाक्षर कहते हैं। अरबी भाषा की अपनी लिपि है जिसे फ़ारसी, उर्दू आदि भाषाओं ने भी अपनाया।

इस परिवार को कुछ विद्वानों ने अफ़्रीकी-एशियाई परिवार भी कहा है। इसके अतिरिक्त अफ़्रीका में बांटू (Bantu) बुशमैन (Bushman) आदि अफ़्रीकी भाषा परिवारों की भी बात की जाती है।

3. **द्रविड भाषाएँ :** भारत के दक्षिण में बोली जाती हैं। तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम चार प्रमुख द्रविड भाषाएँ हैं। इनके अतिरिक्त तुलु, कोडगु आदि अन्य कई भाषाएँ इस वर्ग में आती हैं। हम द्रविड भाषाओं के बारे में विस्तार से आगे पढ़ेंगे।

4. **आस्ट्रिक (Austric) :** इस परिवार की भाषाएँ क्षेत्र विस्तार की दृष्टि से भारोपीय भाषा परिवार के बाद सबसे व्यापक क्षेत्र में बोली जाती हैं। इसका क्षेत्र न्यूज़िलैंड से भारत की पूर्वी सीमा तक है।
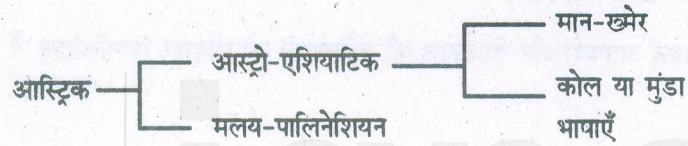
मान-ख्मेर की भाषाएँ म्यानमार, विएटनाम, कंबोडिया आदि देशों में बोली जाती हैं। मुंडा भाषाएँ भारत में बोली जाती हैं, जिनमें संथाली, खासी आदि प्रमुख हैं। मलय-पालिनेशियन में मलय भाषा, भाषा इंडोनेशिया, जवद्वीप की भाषा आदि प्रमुख हैं।

5. **फिनो-उग्रिक (Finno-Ugric) :** इस वर्ग में फिनलैंड की भाषा और हंगरी की भाषा प्रमुख हैं।

6. **अल्ताई (Ultaic) :** इस परिवार के तीन उपवर्ग हैं:

अल्ताई — तुर्की / मंगोल भाषा / मंचू-तुंगस भाषाएँ
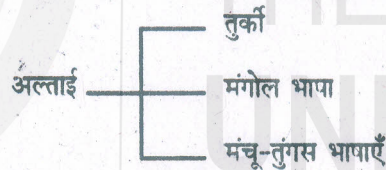
7. **चीनी-तिब्बती परिवार (Sino-Tibetan) :** इस प्रकार के तीन उपवर्ग हैं :
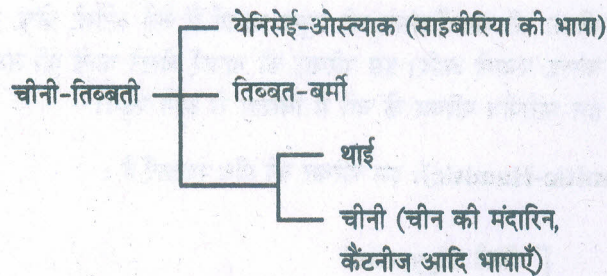
इस परिवार की भाषाओं की मुख्य विशेषता है कि इसमें शब्द के प्रत्यय, उपसर्ग आदि से कई रूप नहीं बनते। शब्द हमेशा अपने मूल रूप में रहता है और हर नए व्याकरणिक अर्थ के लिए उसके नए शब्द का प्रयोग होता है। इस परिवार की भाषाओं में तान की विशेषता है, अर्थात शब्द में तान से अर्थ बदल जाता है।

इनके अतिरिक्त तीन अन्य भाषा परिवारों का भी उल्लेख किया जाता है।

8. **काकेशियन भाषा परिवार (Caucasian) :** इस परिवार की भाषाएँ पश्चिम एशिया के काकेशीय पर्वत शृंखला के पास है।

9. **अमेरिकी भाषाएँ :** इस परिवार में एज़्टेक (Aztec) आदि सैकड़ों भाषाएँ हैं, जो मूल अमेरिकी निवासियों द्वारा बोली जाती है। इन भाषाओं के विद्वान एस्किमो, एज़्टेक आदि छह उपवर्गों में बाँटते हैं।

यह वर्गीकरण केवल पारिवारिक संबंधों और विशेषताओं को समझने के लिए एक आधार है। इस वर्गीकरण में अनेक मत-मतांतर हैं, इसलिए कोई निर्णयात्मक स्थिति नहीं बताई जा सकती। कई भाषाओं को कई विद्वान किसी भी परिवार में नहीं रख पाते। उन्हें अलग ही भाषा परिवार मानते। मतभेदों के रहते हुए परिवार की संकल्पना विश्व की भाषाओं को समझने के लिए हमारे लिए उपयोगी है।

25.3 भारत के भाषा परिवार और प्रमुख भाषाएँ

यह हम पहले ही बता चुके हैं, कि भारत एक बहुभाषा-भाषी देश है जहाँ हमारी द्विभाषी/बहुभाषी प्रवृत्ति देश की एकता में सहायक रही है। 1961 की जनगणना के अनुसार देश में करीब 1652 भाषाएँ बोली जाती हैं जो मूल रूप से पाँच विभिन्न भाषा-परिवारों की हैं। ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक पद्धति के अनुसार भारत वर्ष में निम्नलिखित चार भाषा परिवार पाए जाते हैं :

1. आर्य भाषाएँ (भारोपीय परिवार)
2. द्रविड़ भाषाएँ (द्रविड़ परिवार)
3. मुंडा भाषाएँ (ऑस्ट्रो-एशियाई परिवार)
4. तिब्बत-बर्मी भाषाएँ (चीनी-तिब्बत परिवार)

हर भाषा परिवार के अंतर्गत कई-कई भाषाएँ, उप भाषाएँ एवं बोलियाँ आती हैं। यह कोई आवश्यक नहीं कि एक परिवार की सब भाषाएँ आपस में बोधगम्यता लिए हों। इस संदर्भ में तिब्बती-बर्मी भाषाएँ आपस में तनिक भी बोधगम्य नहीं हैं, परंतु आर्य-भाषाओं में आपसी बोधगम्यता काफ़ी अधिक मात्रा में हैं। यूँ देश का कोई भी राज्य एक भाषा परिवार या एक भाषा तक सीमित नहीं है, पर फिर भी मोटे रूप में इन चार भाषा परिवारों का भू-भाग कुछ-कुछ इस प्रकार है। उत्तर भारत, एवं मध्य भारत में आर्य भाषाएँ, दक्षिण में द्रविड़ भाषाएँ, झारखण्ड में मुण्डा भाषाएँ एवं उत्तर-पूर्वी सीमाओं पर तिब्बती-बर्मी भाषाएँ। कई भाषा वैज्ञानिक अंडमान-निकोबार में बोली जाने वाली भाषाओं को भी एक अलग भाषा परिवार मानते हैं हम इस उल्लेख के बाद स्थानाभाव के कारण अण्डमानी की विस्तृत चर्चा नहीं करेंगे। मेघालय में बोली जाने वाली 'खासी' भाषा एकमात्र ऑस्ट्रो-एशियाई भाषा-परिवार की भाषा है लेकिन मुण्डा वर्ग से इतर है। (देखिए मानचित्र 1 - भारत की भाषाओं का क्षेत्र पृष्ठ 10)। आर्य-भाषाओं में से एक भाषा जो 'सिंहली' के नाम से जानी जाती है श्रीलंका में बोली जाती है। जैसा कि हम पहले बता चुके हैं देश का यह विभाजन बहुत सूक्ष्म रूप से नहीं किया गया है वरन् बृहत्तर भाषाओं की स्थिति को ध्यान में रखकर किया गया है। वास्तविकता तो यह है कि हर राज्य में कोई आर्य भाषा एवं द्रविड़ भाषा बोली जाती है। हाँ मुण्डा भाषाओं का क्षेत्र सीमित है। और यही स्थिति तिब्बत-बर्मी की है। यूँ हर भाषा-परिवार की अनेकानेक शाखाएँ हैं और प्रत्येक शाखा में कई-कई भाषाओं का समागम है, परंतु मोटे तौर पर भाषावैज्ञानिक इन भारतीय भाषाओं का वर्गीकृत विवरण- इस प्रकार देते हैं :

1. अण्डमानी :
   - लघुशाखा - जरावा, ओंमे, सैन्टीनली आदि।
   - बृहत शाखा - बाले, केदे, जुवोई, काटी बो आदि।

2. आर्य :
   - उत्तर-पश्चिमी शाखा - लहंदा, पंजाबी, मुल्तानी, सिंधी, कश्मीरी, नेपाली आदि।
   - दक्षिण-पश्चिमी शाखा - भीली, गुजराती, राजस्थानी आदि।
   - दक्षिणी शाखा - मराठी, कोंकणी, सिंहली, माल्दीवी आदि।
   - पूर्वी शाखा - असमिया, बंगाली, उड़िया आदि।
   - मध्य देशीय शाखा - हिंदी-उर्दू, मैथिली, भोजपुरी, अवधी आदि।

मानचित्र-1 : भारत की भाषाओं का क्षेत्र

Source : Anvita Abbi (1992), Reduplication in South Asian Languages : Allied Publishers, New Delhi

3. द्रविड़ :
- उत्तरी शाखा - कुडुख, माल्तो, ब्राहुई
- मध्य शाखा - तेलुगु, कुई-कुवी, गोण्डी, कोलामी, पारजी आदि।
- दक्षिणी शाखा - तमिल, मलयालम, कन्नड़, तुलु, तोड़ा, कोटा आदि।

4. ऑस्टो-एशियाई :
- अ-मुंडा शाखा - खासी
- मुंडा शाखा - उत्तरी सन्थाली, मुण्डारी, हो आदि।
- मध्य शाखा - खड़िया, जुआंग, नहाली, आदि।
- दक्षिणी शाखा - सोरा, गताह, गोरूम, आदि।

5. तिब्बत-बर्मी :
- तिब्बती शाखा - बोदिक, नेवाड़ी, दियागरी, आदि।
- कुकी शाखा - तांगखुल, काबुल, मणिपुरी आदि।
- बर्मी शाखा - लोलो, होर, हसिया-हसिया आदि।

भारत की बहुभाषिता का प्रमाण है निम्नांकित तालिका जो 1961 की जनगणना के आधार पर दी गई है।

तालिका-1

परिवार	बोलने वालों की संख्या	प्रतिशत
आर्यकुल	32,17,20,700	73.30
द्रविड कुल	10,74,10,820	24.47
ऑस्ट्रिक कुल	61,92,495	1.05
भोटिया-बर्मी कुल	31,83,801	0.73
अन्य	4,29,102	0.45

भारत के संविधान के आठवें भाग में चार अध्याय हैं (अनुच्छेद 343-351) जो भारतीय-भाषाओं के राजनीतिक, प्रादेशिक एवं शैक्षिक अधिकारों की सूचना देते हैं। संविधान की इस अष्टम् सूची में भाषाओं का प्रावधान है। ये सभी हमारी राष्ट्रीय भाषाएँ हैं। 'हिन्दी (देवनागरी रूप में) को संघीय प्रशासन की मुख्य भाषा' और अंग्रेजी को 'सहभाषा' की पदवी से सजाया गया है। तालिका 2 में अष्टम सूची की भाषाएँ बोलने वालों की संख्या और प्रतिशत दिया गया है।

तालिका-2

अष्टम सूची में उल्लिखित भाषाओं के बोलने वाले

(1981 की जनगणना पर आधारित)

भाषा	बोलने वालों की संख्या	प्रतिशत
1. हिंदी	26,41,89,057	39.94
2. तेलुगु	5,42,26,227	8.20
3. बंगाली	5,15,03,085	7.79
4. मराठी	4,96,24,847	7.50
5. तमिल	4,47,30,847	6.76
6. उर्दू	3,63,23,282	5.34

7. गुजराती	3,31,89,039	5.02
8. कन्नड़	2,68,87,837	4.06
9. मलयालम	2,55,95,996	3.92
10. उड़िया	2,28,81,053	3.46
11. पंजाबी	1,85,88,400	2.81
12. कश्मीरी	31,74,684	0.48
13. सिंधी	19,46,278	0.29
14. असमिया	70,525*	0.01
15. संस्कृत	2,946	
16. कोंकणी	15,84,063	
17. गोरखाली (नेपाली)	12,52,444	
18. मणिपुरी	9,04,350	

* 1981 में आसाम में जनगणना पूर्ण नहीं हो पाई थी।

चूँकि कोंकणी, गोरखाली (नेपाली) एवं मणिपुरी (मैतई) 1992 में अष्टम् सूची में जोड़ी गईं, और 1991 की जनगणना के आँकड़े अभी तक सामने नहीं आए हैं, इन भाषाओं के बोलने वालों का प्रतिशत-योग नहीं मिल सका है।

25.3.1 हिंदी-उर्दू की स्थिति

यदि हम हिंदी-उर्दू को एक भाषा के दो स्वरूपों के रूप में देखें तो इस भाषा के बोलने वालों की संख्या 26,41,89,057 + 3,53,23,282 = 29,95,12,339 अर्थात कुल जनसंख्या का लगभग 45 प्रतिशत हो जाता है। इस योग में यदि हम उन अहिंदी भाषियों की संख्या जोड़ दें जो उर्दू-हिंदी का प्रयोग द्वितीय भाषा रूप में करते हैं। (सिंह एवं मनोहरन, 1993) तो हिंदी भाषी समाज की संख्या लगभग 57 प्रतिशत बैठेगी। यह संख्या उन लोगों की है जो हिंदी का प्रयोग वर्ग के भीतर संप्रेषण के लिए करते हैं। यही नहीं, देश के अधिकांश राज्यों में हिंदी-उर्दू का प्रयोग द्वितीय भाषा के रूप में होता है और इस प्रचार व्यवस्था में हमारी हिंदी फिल्मों का बहुत हाथ है। देखिए तालिका 3, देश का ऐसा कोई राज्य नहीं है जहाँ हिंदी-उर्दू बोली या समझी नहीं जाती हो। हर राज्य में अच्छी संख्या में ऐसे लोग अवश्य मिल जाएँगे जो हिंदी भाषी या हिंदी में दुभाषिये होंगे।

तालिका-3

क्रं. सं.	प्रदेश	राज्य भाषाएँ	अन्य प्रमुख भाषाएँ
1.	उत्तर प्रदेश	हिंदी-उर्दू	अंग्रेजी
2.	पंजाब	हिंदी-उर्दू, पंजाबी	अंग्रेजी
3.	दिल्ली	हिंदी-उर्दू	अंग्रेजी, पंजाबी
4.	आंध्र प्रदेश	तेलुगु	हिंदी-उर्दू, अंग्रेजी
5.	गुजरात	गुजराती	हिंदी-उर्दू, अंग्रेजी
6.	केरल	मलयालम	अंग्रेजी, तमिल
7.	राजस्थान	राजस्थानी, हिंदी-उर्दू	भीली, पंजाबी

8.	जम्मू और कश्मीर	आसान उर्दू	पंजाबी, हिंदी-उर्दू, पहाड़ी, राजस्थानी
9.	महाराष्ट्र	मराठी	हिंदी-उर्दू, गुजराती, अंग्रेजी, कन्नड़
10.	तमिलनाडु	तमिल	तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड़, हिंदी-उर्दू
11.	उड़ीसा	उड़िया	हिंदी-उर्दू, कूर्क, तेलुगु, संथाली, नेपाली
12.	बिहार	हिंदी-उर्दू	भोजपुरी, मैथिली, मगही, संथाली, नेपाली
13.	मध्यप्रदेश	हिंदी-उर्दू	छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी, मराठी, गौंडी-भीली
14.	कर्नाटक	कन्नड़	तेलुगु, हिंदी-उर्दू, मराठी, तमिल, तुलु, कोंकणी
15.	असम	असमिया	बंगाली, हिंदी-उर्दू, खासी बोडो, गारो, अंग्रेजी

हाल में किए गए शोध (भारत का जन-मानस:सिंह एवं मनोहरन 1993) से ज्ञात होता है कि देश की सब भाषाओं में से हिंदी ही एक ऐसी भाषा है जिसके अंतर्गत सबसे अधिक संख्या में बोलियाँ और उपभाषाएँ समाहित हैं। देखिए तालिका 4. ये आंकड़े देश के 4536* समुदायों (Communities) पर आधारित हैं।

तालिका 4 : (भारत का 'जनमानस' शोध पर आधारित)

भाषा	बोलने वाले समुदायों की संख्या
हिंदी भाषा	1288
अवधी	04
भोजपुरी	12
ब्रज-भाषा	04
बुंदेली	05
चम्बियाली	03
छत्तीसगढ़ी	17
धुंधारी	04
गढ़वाली	01
गूजरी	01
हड़ौती	01
हरियाणवी	15
हिंदी	1025
कांडी	15
खड़ी बोली	02
कुड़माली	09
कुमाँउनी	03
मगही	25

मैथिली	21
मालवी	06
मण्डियाली	04
मारवाड़ी	38
मेवाड़ी	23
नागापुरी	01
निमाड़ी	06
पहाड़ी	14
पंचपरगनिया	02
राजस्थानी	07
सदरी/सदनी	20
उर्दू भाषा	126

* शोधकर्ताओं ने सम्पूर्ण देश को 4536 समुदायों (Communities) में बाँटा, जिनमें कुल 2198 समुदाय ही प्रमुख माने गए।

तालिका 4 से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि संविधान में जिस हिंदी की बात की गई है वह कई उपभाषाओं एवं बोलियों का समागम रूप है। यूँ अपने आप में हिंदी बोलने वाले समुदाय 1025 हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि चूँकि 'हिंदी' के अंतर्गत 28 उप भाषाओं/बोलियों का समागम है, कुछ भाषावैज्ञानिक हिंदी को अनेक भाषाओं/बोलियों का 'समूह' मानते हैं। यदि हम इसमें उर्दू भी जोड़ दें क्योंकि मौखिक सम्प्रेषण के धरातल पर उर्दू और हिंदी में संपूर्ण बोधगम्यता है तो 1288 + 126 = 2114 समुदाय (Communities) इस भाषा को बोलने-समझने वाले होंगे। देश की जनसंख्या का एक बड़ा भाग परस्पर समुदायों (intra community) में एवं अपने समुदाय के भीतर (inter community) संप्रेषण के लिए हिंदी-उर्दू का प्रयोग करता है। श्रीवास्तव के शब्दों में पाँच हजार पाँच सौ साल से आबाद, पन्द्रह (अब अट्ठारह) प्रमुख राष्ट्रीय स्तर की भाषाओं के साथ अस्मिता जोड़ने वाला, 1952 मातृ भाषाओं और स्कूल में अपनाई जाने वाली 67 शैक्षिक भाषाओं वाला यह देश निश्चय ही भाषा अध्येताओं, शिक्षा विदों और नीति-निर्धारण करने वाले राजनीतिज्ञों के लिए एक चुनौती बन रहा है।

25.3.2 भारतीय भाषा स्थिति का आकलन

भारत की भाषाई स्थिति का जो खाका उभर कर सामने आता है, उसके निम्नलिखित प्रमुख लक्षण हैं (श्रीवास्तव 1994 : 278)।

1. भारत की विभिन्न जनभाषाएँ प्रमुखतः चार भाषायी कुल के अंतर्गत हैं - आर्यकुल, द्रविड कुल, ऑस्ट्रिक कुल और भोट-बर्मी (तिब्बत-बर्मी) कुल, जिनके बोलने वालों की संख्या अपने योग में 99.55 प्रतिशत है।

2. चार भाषायी कुलों में दो परिवार (आर्य और द्रविड़) अपनी आबादी में कुल जनसंख्या के 97.7 प्रतिशत हैं।

3. अष्टम सूची में मान्य अट्ठारह भाषाओं (हिंदी, तेलुगु, मराठी, बंगाली, तमिल, उर्दू, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, उड़िया, पंजाबी, आसामी, कश्मीरी, सिंधी, कोंकणी, मणिपुरी, नेपाली और संस्कृत) के बोलने वालों की संख्या भारत की कुल आबादी का 93 प्रतिशत है।

4. ऐसी केवल 204 बोलियाँ (12 प्रतिशत) ही हैं, जिनके मातृभाषी दस हजार या उससे ऊपर की संख्या में हैं। एक हजार से कम बोलने वालों की बोलियों की संख्या 1,428 (कुल भाषाओं का 75

प्रतिशत) है। इससे यह निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है कि भारत में ऐसी बोलियाँ अनेक हैं, जिनके बोलने वाले कबीलों के रूप में अपनी निश्चित अस्मिता बनाए हुए हैं और अभी भारत की मुख्य सम्प्रेषण-व्यवस्था के साथ जुड़ नहीं पाए हैं।

5. भारत की सभी प्रमुख भाषाएँ अपने स्वयं के भू-भाग के बाहर भी बोली और समझी जाती हैं। अपने भू-भाग से उखड़े हुए ऐसे व्यक्ति अपने घरेलू जीवन में तो अपनी मातृभाषा का प्रयोग करते हैं, पर अपने बाह्य व्यवहार में प्रमुख स्थानिक भाषा का प्रयोग भी करते देखे जाते हैं। यह स्थिति उन्हें द्विभाषिक बनने के लिए बाध्य करती है, जिसे वे सहज रूप में स्वीकार करते पाए जाते हैं।

6. प्रशासनिक सुविधा के लिए विभिन्न प्रदेशों को एक भाषिक या द्विभाषिक भले ही घोषित कर दिया गया हो, पर अपनी प्रकृति में वे बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक हैं।

7. विभिन्न प्रदेशों की सीमा-क्षेत्र वस्तुतः विसरण (डिफ्यूजन) क्षेत्र हैं। यहाँ विभिन्न भाषायी परिवारों की विभिन्न भाषाएँ सम्पर्क की विभिन्न स्थितियों में देखने को मिलती हैं। भाषा-मिश्रण और भाषा परिवर्तन इन सीमावर्ती विसरण-क्षेत्रों की अपनी विशेपताएँ हैं यही कारण है कि अगर हम प्रदेशों की राजनीतिक सीमा को भाषायी सिद्धांत के आधार पर निर्धारित करना चाहें तो ऐसे कई क्षेत्र हैं, का सामना करना पड़ेगा जिन्हें हम किसी एक या द्विभाषी क्षेत्र के भीतर समेटने में किसी प्रकार सफल नहीं हो सकते (भारत सरकार, 1973)।

इस सूची में निम्न तथ्य जोड़ देना आवश्यक है:

8. भारतीय संविधान के अनुसार यद्यपि हिंदी बोलने वालों का राज्य उत्तर प्रदेश एवं उर्दू बोलने वालों का राज्य जम्मू व कश्मीर माना गया है, उर्दू अपने तथाकथित राज्य में न बोली जाती है और न ही सरकारी क्षेत्रों में प्रयुक्त होती है। उर्दू का बोली-स्थान हिंदी से भिन्न नहीं हैं। इन दो भाषाओं को अलग-अलग करके देखने में मात्र राजनीतिक हस्तक्षेप है। अतः जम्मू-कश्मीर में उर्दू एक सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है, जिसको हिंदी से भिन्न नहीं माना जा सकता है।

25.4 आर्य भाषा परिवार

संविधान में इन भाषा-परिवारों की अधिकाधिक भाषाओं का समागम है। संस्कृत, हिंदी, पंजाबी, डोगरी, गुजराती, मराठी, कोंकणी, बंगाली, असमिया, सिंहली (श्रीलंका में बोली जाने वाली) आदि भाषाएँ इस परिवार की सदस्य हैं एवं देश के खासे बड़े भू-भाग में बोली जाती हैं। यूँ हर भाषा अपने-आप में विशेष व्याकरणिक विशेप्रताएँ लिए हुए है, परंतु कुछ ऐसी भी विशेषताएँ हैं जो इन भाषाओं को एक में बाँधती हैं। इन्हीं विशेपताओं के कारण हम जान पाते हैं कि अमुक भाषा द्रविड़-परिवार की है या मुण्डा परिवार की। आइए देखें इन विशेषताओं को। सर्वप्रथम यह बता देना आवश्यक होगा कि जॉन बीम्स ने 'भारतीय आर्य भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण' नामक तीन भाग 1872, 1875 एवं 1879 में क्रमशः प्रकाशित किए। प्रथम भाग में लम्बी भूमिका के साथ-साथ ध्वनि अवलोकन है, दूसरे भाग में संज्ञा तथा सर्वनाम एवं तीसरे भाग में क्रिया का विवेचन है। इस विशालकाय व्याकरण की टक्कर का व्याकरण अभी तक दूसरा सामने नहीं आया है। बीम्स के अतिरिक्त जार्ज अब्राहम ग्रीयरसन ने 1921 में 'भारतीय भाषाओं का सर्वे' नामक 11 भागों का ग्रन्थ तैयार किया जो अब भी अद्वितीय माना जाता है। यही एक मात्र ग्रन्थ है जिसमें भारतवर्ष में बोली जाने वाली हर भाषा की सोदाहरण व्याख्या एवं व्याकरण दिया गया है। आरंभ में बहुत विस्तृत और विद्वत्तापूर्ण भूमिका है, जिसमें भारतीय आर्य भाषाओं का प्रामाणिक इतिहास है। इसके अतिरिक्त सर राल्फ टरनर का वृहत् कोश जो भारत की प्रमुख आर्य-भाषाओं में प्रयुक्त शब्दों का व्युत्पत्ति-कोश है (1966) तुलनात्मक अध्ययन के लिए बेजोड़ है। इसके अतिरिक्त आर्य परिवार की अलग-अलग भाषाओं पर भी बृहद कार्य हुआ है। आर्य भाषाओं के विषय में हम तीन आयामों में पढ़ेंगे।

1. ध्वनि व्यवस्था

2. रूप व्यस्था एवं शब्द-संरचना व्यवस्था

3. वाक्य विन्यास।

25.4.1 ध्वनि व्यवस्था

(क) स्वर

(i) प्रायः सभी आर्य भाषाएँ स्वरों में भेद, मात्रा की अपेक्षा उनके उच्चारण-स्थान के आधार पर करती है। अत: अ और आ, इ और ई, उ और ऊ, ए और ऐ एवं ओ और औ में जो भेद है वह मूल रूप से उनके भिन्न-भिन्न उच्चारण स्थान से हैं। (यह बात द्रविड़ भाषाओं पर कम लागू होती हैं)।

(ii) प्राय: सभी स्वर मौखिक एवं अनुनासिक - दो प्रकारों में मिलते हैं। अत: आ : आँ (खास : खाँस), ई : ईं (कही : कहीं), ऊ : ऊँ (ऊख : ऊँख), आदि। अनुनासिकता आर्य भाषाओं की ऐसी विशेषता है जिसे गैर-आर्य भाषी को सीखते-सीखते काफी समय लग जाता है। अनुनासिकता ही एक ऐसी विशेषता है जो मोटे तौर पर देश को उत्तर एवं दक्षिण में विभाजित करती है। देखिए मानचित्र संख्या 2.

(ख) व्यंजन

(i) आर्य भाषाएँ व्यंजनों में चौमुखी भेद करती हैं।

घोष : अघोष, अल्पप्राण, महाप्राण।

	अघोष	घोष
अल्पप्राण	क, च, त, प	ग, ज, द, ब,
महाप्राण	ख, छ, थ, फ	घ, झ, ध, भ

कुछ भाषाएँ जैसे पंजाबी, सिंधी इसका अपवाद हैं जहाँ घोष महाप्राण व्यंजनों की अपेक्षा क्रमश अघोष अल्पप्राण एवं घोष (implosives) (अंत: स्फोटी व्यंजन) पाए जाते हैं। घोष-महाप्राण ध्वनियाँ आर्य भाषाओं को गैर आर्य भाषाओं से अलग करती है।

(ii) स्पर्श संघर्षी एवं शुद्ध संघर्षी व्यंजनों की बहुलता - च, छ, ज, एवं फ़, ज़, ज़, श, स, ह, त्स, त्छ (मराठी एवं कोंकाणी में) और उनके घोष रूप दज, दझ आदि।

(iii) नासिक्य, पार्श्विक एवं लुण्ठित व्यंजन महाप्राण की स्थिति में भी उपलब्ध होते हैं।

उदाहरणत:

कान्हा /न्ह/ हिंदी

कुम्हार /म्ह/ हिंदी

दूल्हा /ल्ह/ हिंदी

हरर्ह /र्ह/ अवधी (हि. 'अरहर')

25.4.2 रूप व्यवस्था एवं शब्द रचना

(i) लगभग सब की सब आर्य भाषाएँ विभक्ति प्रधान (Inflecting) भाषाएँ हैं। अर्थात् प्रत्यय, (परसर्ग एवं उपसर्ग) शब्दों में कुछ इस प्रकार घुल मिल जाते हैं कि हर एक प्रत्यय को पृथक करके उसकी व्याकरणिक इकाई निर्धारित करना सरल नहीं होता। यही नहीं, प्रत्यय शब्दों का रूप भी परिवर्तित हो जाता है। उदाहरणतया हिंदी के शब्द 'लड़कियों' को देखिए। इस शब्द में स्त्रीलिंग, बहुवचन एवं तिर्यक चिह्न तीनों को अलग-अलग करना कठिन है। यही नहीं मूल रूप 'लड़की' में जो दीर्घ स्वर 'ई' है वह भी बहुवचन में 'इ' (हस्व) में परिवर्तित हो जाता है। रूप परिवर्तन का श्रेष्ठ उदाहरण है जाना : गया (भूतकाल) जहाँ दो संबंधित रूपों में कोई भी समानता नहीं है। विभक्ति प्रधान भाषाओं में portmanteau morphs की भी बहुलता होती है। अत: 'खाएगी' शब्द में 'गी' एक साथ कई व्याकरणिक सूचना दे रहा है - जैसे कि वचन (एक वचन), लिंग (स्त्रीलिंग),

एवं काल (भविष्य)। अत: 'गी' को तीन भागों में अलग-अलग काट कर नहीं देखा जा सकता। इसके अतिरिक्त संधियों की बहुलता ही आर्य भाषाओं की विशेषता हैं।

(ii) सामान्यत: आर्य भाषाओं में चार भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्द पाए जाते हैं : तत्सम, तद्भव, देशज एवं विदेशी। तत्सम शब्द वे हैं जो संस्कृत से आए हैं, और जिन्हें बिना किसी परिवर्तन के स्वीकार का लिया गया है। उदाहरणत: कक्ष, अरुण (हि.) संस्कार, भीषण (बंगला), स्वभाव, शींग (कोंकणी) आदि। तद्भव वे शब्द हैं जिनका उद्गम तो संस्कृत है पर वे अब अपने मूल रूप में न होकर परिवर्तित रूप में पाए जाते हैं। उदाहरण के तौर पर हिंदी शब्द 'हाथ' संस्कृत के 'हस्त' से बना है। उसी प्रकार पंजाबी (वेखणा) संस्कृत के 'वीक्ष' से बना है या फिर 'खेत' शब्द जोकि अधिकांश आर्य भाषाओं में पाया जाता है, संस्कृत के 'क्षेत्र' शब्द का रूप-परिवर्तित शब्द है। विदेशी शब्दों को दो कोटियों में रखा जा सकता है : (क) मुसलमानी प्रभाव् युक्त शब्द (अरबी, फारसी, तुर्की एवं पश्तो), (ख) यूरोपीय प्रभाव युक्त शब्द (पुर्तगाली, फ्रांसीसी, अंग्रेजी)। अत: 'कुर्सी', 'शीशा', 'दीवार', 'दवा' (फारसी), 'कसूर', 'किस्मत' (अरबी), 'बीबी', 'लाश' (तुर्की), 'पटाखा', 'भड़ास' एवं 'गुण्डा' (पश्तो) जैसे शब्दी ग्यारहवीं शताब्दी से हमारी आर्य भाषाओं में निरंतर प्रवेश पर रहे हैं। 17वीं शताब्दी से पुर्तगाली, फ्रांसीसी एवं अंग्रेजी भाषाओं का प्रभाव आर्य भाषाओं पर पड़ा एवं इन भाषाओं के शब्द अधिकाधिक मात्रा में आर्य-भाषाओं में समाने लगे। उदाहरणत: 'अलमारी', 'गोभी', 'मेज़' (पुर्तगाली), 'कूपन', 'रेस्टोरेंट (फ्रांसीसी)', 'तुरुप', 'बम' (डच), 'बटन', 'टैक्सी', 'रेडियों' (अंग्रेजी)। यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारत की अन्य भाषाओं में भी यूरोपीय शब्दों की खासतौर से अंग्रेजी शब्दों की बहुलता है। देशज शब्द या तो वे हैं जो देश की अन्य भाषाओं से आए हैं 'मोर', 'ओखली', 'घोड़ा' आदि या फिर वे जो 'आधुनिक समय की बोलचाल में स्वत: विकसित हुए हैं' (बाबूराम सक्सेना)। उदाहरणत: 'पेड़', 'गड़गड़', 'ठंडाई', 'फटफटिया' आदि।

(iii) सामान्यत: आर्य भाषाओं में दो वचन (एक एवं बहुवचन) एवं दो लिंगों का प्रावधान है (कोंकणी, गुजराती एवं मराठी अपवाद है)। यहीं नहीं विशेषण भी विशेष्य के अनुसार रूप परिवर्तित कर लेता है। अत: हिंदी में अच्छा + आ लड़क + आ पर अच्छा + ई लड़क + ई। जब विशेष्य बहुवचन में होता है तो विशेषण भी अनुरूपी हो जाता है,

अत: पंजाबी में:		**हिंदी में**
वड्ड + आ	मुण्ड + आ	'बड़ा लड़का'
वड्ड + ई	कुड़ + ई	'बड़ी लड़की'
वड्ड + ए	मुण्ड + ए	'बड़े लड़के'
वड्ड + इयाँ	कुड़ + इयाँ	'बड़ी लड़कियाँ'

स्पस्ट है कि पंजाबी की भांति हिंदी विशेषण में बहुवचन भेदक नहीं है। अत: एक वचन में भी 'बड़ी' एवं बहुवचन में 'बड़ी'। कोंकणी में स्त्रीलिंग, पुल्लिंग एवं नपुंसकलिंग विशेष्य के अनुसार रूप परिवर्तन कर लेता है।

(iv) सर्वनामों की शृंखला तिर्यक रूप में एवं सरल (non oblique) रूप में भिन्न-भिन्न रूपों में होती है।

उदाहरण : हिंदी कर्ता : मैं, तुम, वो - सरल रूप

मुझ, तुझ, उस - तिर्यक रूप

यही स्थिति संज्ञाओं की है। हर आकारांत पुल्लिंग तिर्यक रूप में 'ए' ध्वनि लिए होता है। अत: लड़का पर लड़के (को/से आदि)। कमरा पर कमरे में (आ > ए)।

25.4.3 वाक्य विन्यास

यूँ तो 'वाक्य विन्यास' पर काफ़ी कुछ जा सकता है परंतु हम यहाँ संक्षेप में वही सिद्धांत लेंगे जिसकी चर्चा एवं एवं शोध सम्प्रति विश्वभर में हो रही है। 1966 में जोसेफ ग्रीनबर्ग विश्व की करीब 68

भाषाओं पर काम करके इस नतीजे पर पहुँचे थे कि यदि भाषाएँ मुख्य रूप से sov (कर्ता, कर्म, क्रिया) भाषाएँ हो तो उनमें कुछ खास विशेषताएँ होना आवश्यक है। उन्होंने इन विशेषताओं को Universals (सार्वभौमिक/सार्वभाषिक लक्षण) का नाम दिया है। आइए देखें आर्य-भाषाओं में कितने Universals (सार्वभाषिक लक्षण) हैं।

(क) शब्द क्रम/शृंखला word order - वाक्य में शब्दों की शृंखला कर्ता-कर्म-क्रिया के क्रम में होती है। उदाहरण हि. राम मूँगफली खाता है (कर्ता + कर्म + क्रिया) प्रश्नवाचक वाक्यों में प्रश्नसूचक शब्द की स्थिति निर्धारित नहीं होती। किस शब्द पर जोर दिया जा रहा है, उस पर निर्भर करता है। अतः उपर्युक्त वाक्य प्रश्न सूचक शब्द के साथ इस प्रकार से भी बोला जा सकता है।

(i) क्या राम मूँगफली खाता है?

(ii) राम क्या मूँगफली खाता है?

(iii) राम मूँगफली खाता है क्या?

रेखांकित शब्द ही प्रश्नसूचक चिह्न के दायरे में हैं। यही स्थिति लगभग अन्य आर्य भाषाओं की है।

दूसरी बात, विशेषण विशेष्य के पहले आता है जैसे, वे दो रौबदार, पगड़ी-बाँधे डाकू ....। रेखांकित शब्द विशेषण हैं जिनका विशेष्य विशेषणों के अंत में आता है। यही बात संबंध कारक वाक्यों की है। बंगला रामेर बोई 'राम की किताब', पंजाबी पुत्तर दा कोट 'बेटे का कोट'। रेखांकित शब्द जो बाद में आने वाले संज्ञा शब्द से संबंध बतला रहे हैं विशेषण की भांति है अतः विशेष्य के पहले आते हैं और एक बात। संबंध वाचक उपवाक्य संज्ञा से पहले लगता है क्योंकि वह उसका विशेषण है। यही नहीं उपवाक्य में Correlative 'वो' (जो कि लगभग सभी आर्य भाषाओं में तृतीय पुरुष एकवचन सर्वनाम चिह्न) पहले लगता है। अतः हिंदी में ध्यान दें : जो लड़का कल आया था वो मेरे भाई का दोस्त है।

तीसरी बात, क्रिया पद यूँ तो वाक्य के अंत में आता है परंतु सहायक क्रिया मुख्य क्रिया के भी बाद आती है अतः बंगला : शे रान्ना कोरे छे (उसने खाना बनाया है)।

अंत में सबसे मुख्य बात SOV भाषाओं में कारक चिह्न परसर्ग संज्ञा के बाद लगते हैं पहले नहीं। उदाहरण: हिं : किताब में, बंगला : घोर - ए 'घर में' पं. रोटी ते (रोटी पर) आदि। तुलना कीजिए अंग्रेजी से जहां कारक चिह्न संज्ञा के पहले लगते हैं अंतः In the book, In the house, On the bread आदि।

चूँकि आर्य भाषाओं में संज्ञा बाद में और उसके अनेकानेक विशेषण संज्ञा के पहले आते हैं, इन भाषाओं को Head final (शीर्षान्त भाषाएँ) कहा जाता है।

चलते-चलते एक बात बता दें कि कश्मीरी भाषा यूँ तो आर्य-भाषा है पर इसमें कर्ता-क्रिया का क्रम कर्ता-क्रिया-कर्म (अंग्रेजी की भांति) के अनुसार है।

उदाहरण के लिए:

कश्मीरी : 1. तेमीस पाजी गासून वान

उस-को चाहिए जाना अब

'उसको अब जाना चाहिए'

2. तेमी-स एहु सैथा पास

उस-को/के पास है काफी पैसा

'उसके पास काफी पैसा है।'

25.5 द्रविड़ परिवार

यह माना जाता है कि द्रविड़ परिवार भारतवर्ष में आर्य-परिवार के आगमन से पहले भी यहाँ मौजूद था और द्रविड़ जातियाँ भी आर्यों की भांति देश के उत्तर-पश्चिम दिशा से आई थी। इस बात का प्रमाण है ब्राहुई भाषा जो है तो द्रविड़ पर आज भी ईरान में बोली जाती है। यही नहीं द्रविड़ भाषाओं का प्रभुत्व उत्तर एवं मध्य भारत में था पर धीरे-धीरे आर्यों के दबाव में आकर यह जाति नीचे की ओर खिसकती गई। तदुपरांत आज मुख्य रूप से भारत के दक्षिण में बोली जाने वाली अधिकतर भाषाएँ इसी परिवार की हैं। हाँ, झारखण्ड में दो द्रविड़ भाषाएँ कुडुख एवं माल्तो बिहारी एवं अन्य आर्य भाषाओं से इस तरह घिरी हुई हैं। जैसे ताल के बीचों-बीच एक तैरती नौका। यही नहीं, श्रीलंका, जो मुख्यत: सिंहली नामक आर्य-भाषा प्रधान देश मानी जाती है, उसके उत्तरी भूभाग में द्रविड़ भाषा तमिल का बोलबाला है। द्रविड़ भाषाओं पर अब तक काफी काम हो चुका है जिसमें सबसे प्रमुख है राबर्ट काल्डवैल का तुलनात्मक व्याकरण (A Comparative Grammar of Dravidian or South Indian Family of Languages) जो 1856 में प्रकाशित हुआ था। इसके अतिरिक्त एम.बी. एमनो का कोलामी, नाइकी, पारजी एवं उल्लारी भाषाओं पर किया गया कार्य (1955), आन्द्रोनोव का द्रविड़ एवं आर्य भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन (1963), भ. कृष्णामूर्ति का तेलुगु एवं कुई-कुवी का 'मध्य द्रविड भाषाओं' में स्थापना (1961) एंवं इन्हीं का वृहद् एवं सम्पूर्ण तेलुगु क्रियाओं का तुलनात्मक अध्ययन (1961) उल्लेखनीय शोध है। द्रविड़-भाषा परिवार की आदिवासी भाषाओं पर भी काफी मात्रा में शोध हो चुका है। अत: आज द्रविड़ भाषा परिवार के बारे में हमारी जानकारी पर्याप्त न भी हो, पर अधूरी भी नहीं है। आइए देखें इस परिवार की भाषाओं की प्रमुख व्याकरणिक विशेषताएँ क्या हैं।

25.5.1 ध्वनि व्यवस्था

(क) स्वर : द्रविड़ भाषाओं में ह्रस्व एवं दीर्घ स्वरों का वैपम्य पाया जाता है। अत: आधुनिक द्रविड़ भाषाओं में ए ए:, ओ ओ:, भेदक हैं।

(ख) व्यंजन : मूर्धन्य पार्श्विक (retroflex lateral) द्रविड़ भाषाओं की सामान्य प्रकृति है। तमिल में मूर्धन्य अर्ध-व्यंजन (reltrolex approximant) जो 'द्रविड़मुनेत्रकषगम' शब्द में भी है, विशेपकर प्रयोग होता है। अनुनासिकता एवं घोप महाप्राण व्यंजनों को अभाव है। उत्तरी द्रविड़ में x, q, एवं ? की प्रचुरता है। कुछ द्रविड़ भाषाओं में नासिक्य ध्वनियाँ दन्त्य एवं वर्त्स्य में भेद करती हैं जैसे मलयालम एवं तमिल। देखिए मानचित्र सं. 2.(पृष्ठ 20)

25.5.2 रूप व्यवस्था एवं शब्द रचना

यह कहा जाता है कि इस भाषाओं की रूप व्यवस्था काफी पारदशी है क्योंकि इन भाषाओं की प्रवृत्ति योगात्मक है व ये परसर्ग प्रधान भाषाएँ हैं अर्थात् शब्द को आसानी से भिन्न-भिन्न व्याकरणिक इकाइयों में तोड़कर समझा जा सकता है। इनकी विशेपताएँ हैं :

(i) संज्ञा-पद एवं क्रिया-पद कई प्रकार की व्याकरणिक सूचनाओं से ओत-प्रोत होने के कारण मिश्रित रूप में पाए जाते हैं। तमिल : अवन् (अ + अन्) 'वह आदमी', अवळ-वह औरत।

(ii) लिंग दो प्रकार का होता है : सजीव व निर्जीव। सजीव कभी-कभी कुछ-कुछ भाषाओं में पुल्लिग या स्त्रीलिंग या आदरणीय में विभाजित हो जाता है। तेलुगु में स्त्रीलिंग यूँ तो नदारद है अत: एकवचन स्त्रीलिंग संज्ञा 'निर्जीव एकवचन' की भांति एवं बहुवचन स्त्रीलिंग संज्ञा सजीव बहुवचन की भांति प्रयोग में आती है।

(iii) कारक चिह्न विभक्ति के रूप में न होकर परसर्ग के रूप में पाए जाते हैं।

(iv) प्रथम पुरुप बहुवचन सर्वनाम दो प्रकार के होते हैं। पहले तो वे जिनमें श्रोता के होने का भी बोध हो। दूसरे वे जिनमें मात्र वक्ता का होने का ही बोध हो। अत: तमिल नाम (= हम और आप) एवं नाङ्कळ (हम, पर आप नहीं)।

25.6.3 वाक्य विन्यास

(i) शब्द का क्रम आर्य भाषाओं के समान कर्ता-कर्म-क्रिया के अनुरूप है।
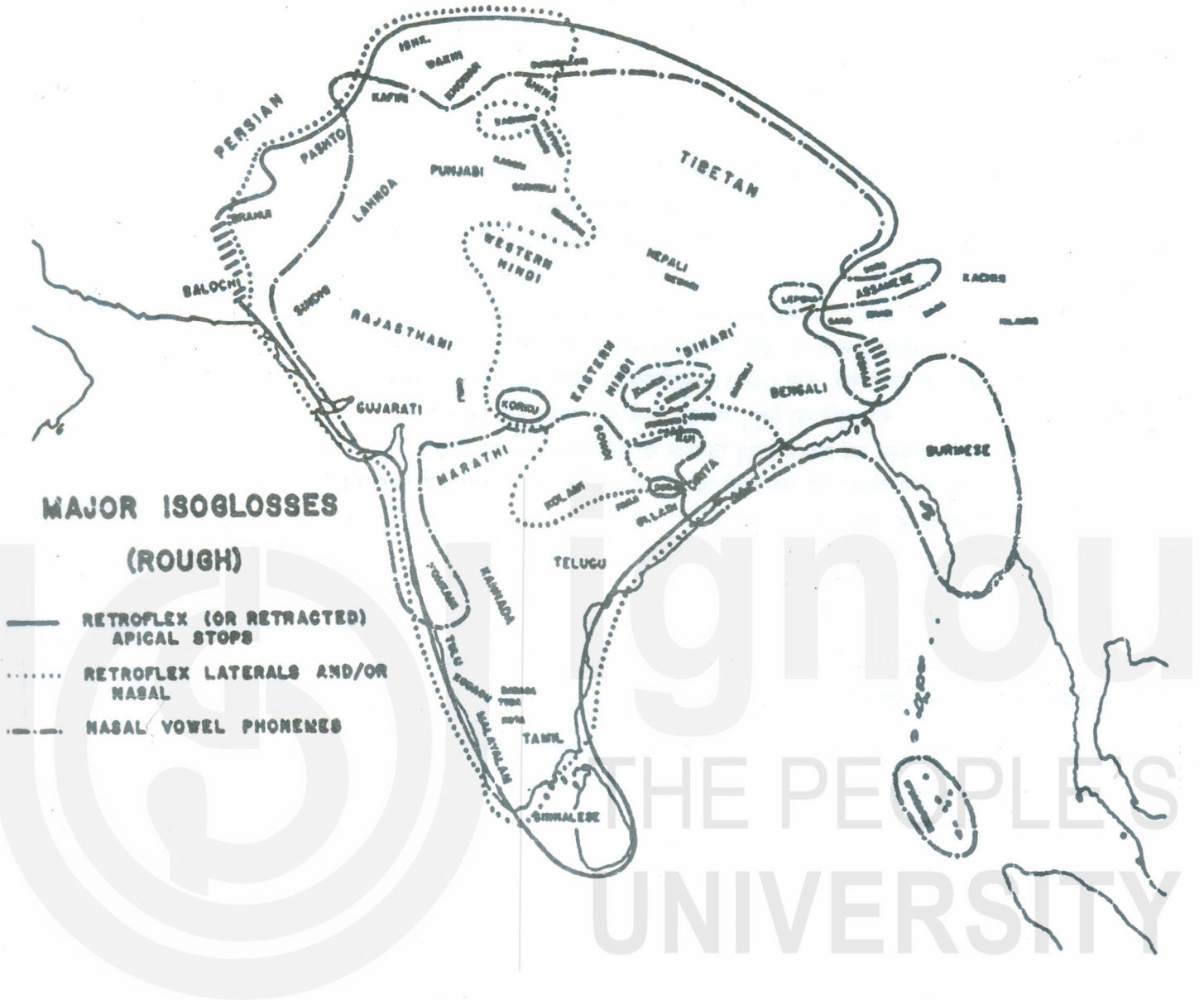
मानचित्र-2 : ध्वनि लक्षणों का वितरण

Source : A.K. Ramanujan & Colin Masia (1969). 'Towards a phonological typology of the Indian linguistic area' In Current Trends in Linguistics, Vol.5, T. Sebeok (Ed.)

(ii) संबंध वाचक उपवाक्य संबंध वाचक सर्वनामों का प्रयोग नहीं करते हैं अपितु कृदन्तपरक विशेषण एवं संज्ञाओं का प्रयोग करते हैं।

(iii) विरोधात्मक क्रिया विशेषण क्रिया का रूप लेते हैं। अत: किसी सामान्य क्रिया की भांति उनमें कर्ता, काल एवं पक्ष की अन्विति होती है। अत: तमिल में वर माट्टान् 'वह नहीं आएगा' पद में माट्टान् तीन व्याकरण्क इकाइयों के मेल से बना है। पहले तो निषेधात्मक 'नहीं' 'माट्टा', दूसरे यह सहायक क्रिया के समान है अत: वर 'आना' के निषेधात्मक भविष्य काल का द्योतक है, और तीसरे- अन् उत्तम पुरुष एकवचन का द्योतक है। इसीलिए इस शब्द का विभाजन माट्टा + अन् किया जा सकता है। तुलना कीजिए की यही वाक्य हिंदी में कितने भिन्न ढंग से गढ़ा गया है।

(iv) क्रिया विशेषण 'शीक्किरमाका' (शीघ्रम + आका) प्राय: संज्ञा शब्द + 'होना' क्रिया के मिश्रित रूप होते हैं। अत: 'जल्दी' क्रिया विशेषण वाक्य में 'जल्दी होना' प्रयोग होगा। इस पद में 'आका' का अर्थ 'होने' से है।

(v) यद्यपि शब्दों की शृंखला निश्चित है परंतु आर्य-भाषाओं की भांति कर्ता-कर्म का अदल-बदल संभव है। हाँ, क्रिया का स्थान सदैव वाक्य के अंत में ही निश्चित है। अत: (i) वाक्य (ii) एवं (iii) में बदला जा सकता है।

(i) अवन नेट्ट्रउ अवळइप पार्तान

उसने (पु.) कल उसको (स्त्री.) देखा (पु.)

'उसने (पुल्लिंग)' उसको (स्त्रीलिंग) कल देखा' ये शृंखलाएँ भी संभव हैं।

(ii) 3 + 1 + 2 + 4

(iii) 2 + 1 + 3 + 4

(v) इन भाषाओं में, विशेष रूप में तमिल में एक वाक्य में एक ही विधेय क्रिया का प्रयोग हो सकता है। परिणामस्वरूप बाकी क्रियाएँ अ-विधेय क्रिया रूप ले लेती है। अत: मुख्य क्रिया के पहले वाले उपवाक्य भावार्थक संज्ञा, कृदंत क्रियाविशेषण (Adverbial Participle), एवं संबंधवाचक कृदंत क्रिया विशेषण से ओत-प्रोत होते हैं। अत: नीचे दिए गए वाक्य में **वान्ता** 'आया वाला' या फिर 'आये हुए' अर्थ में लिया जा सकता है।

(क) नेट्रउ वन्ता ओरू मन्तिरी

कल आए हुए एक मंत्री

'जो मंत्री कल आए थे।'

25.6 ऑस्ट्रो-एशियाई (मुण्डा) परिवार

हमारे देश की सबसे प्राचीन संस्कृति यदि आज तक कोई जीवित है तो वह है मुण्डा परिवार के रुप में। ऑस्ट्रो-एशियाई जातियाँ ही सही मायने में पूर्ण रूप से भारतीय हैं क्योंकि ये यहीं की जन्मी व पली जातियाँ हैं। बाकी सब जातियाँ जैसे कि द्रविड परिवार, आर्य-परिवार एवं तिब्बत-बर्मी परिवार की जातियाँ किसी न किसी काल में देश की सीमा के बाहर से आईं और फिर बाद में भारतवर्ष को उन्होंने अपना निवास-स्थान बना लिया। पर मुण्डा एवं अन्य संबंधित जातियाँ ही खास भारतीय हैं। कहा जाता है एक जमाने में इन जातियों का फैलाव सारे भारतवर्ष में था। भूमि से जुड़े रहने की प्रकृति एवं शांतिप्रियता के कारण यह जाति द्रविड़ एवं आर्यों के युद्ध में टिक नहीं पाई और यह परिवार सिमट कर मुख्य रूप से बिहार, बंगाल, उड़ीसा एवं मध्य प्रदेश के जंगलों एवं ग्रामों में (झारखंड) रह गया। हाँ, जैसे कि पहले बताया जा चुका है, इसकी एक उप शाखा मॉन ख्मेर नाम से जानी जाती है, जिसकी दो मात्र

भाषाएँ 'खासी' मेघालय में बोली जाती हैं एवं 'निकोबारा निकोबार' द्वीपों में। निकोबारी को मुण्डा और मॉन खमेर की कड़ी समझा जाता है।

दुर्भाग्यवश, जितनी ये भाषाएँ प्राचीन हैं उतना ही इन पर कम काम हुआ है। फिर भी यदि इस परिवार की भाषाओं की आपस में तुलना की जाए तो मुण्डा भाषाओं पर अधिक और 'खासी' एवं 'निकोबारी' पर बहुत ही कम शोध हुआ है। पिन्नो का 'The Position of the Munda Language within the Austro-Asiatic family (1963)' एवं 'मुण्डा भाषाओं में क्रिया का तुलनात्मक अध्ययन (1966)' विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त नार्मन ज़ाइड का 1966 का कार्य 'Studies in Comparative Austro Asiatic Linguistics' एवं मुण्डा एवं अ-मुण्डा भाषाएँ (1966) विशेष सारगर्भित शोध हैं। हाल ही में प्रकाशित अब्बी (1977) 'Language of Tribal and Indigenous People of Indian: The Ethnic Space' में अब्बी का खड़िया पर, भट्ट का मुण्डा भाषाओं की संज्ञा-क्रिया के अंतर पर, आ. जाइद का गोरूम पर, स्तारोस्ता का सोरा पर, ना. जाइद का गुतोब, रेमो एवं गताह पर, इशितयाक का संथाली एवं मुण्डा पर, नागराजा एवं फिलिप्स का 'खासी' पर शोध विशेष चर्चित हो चुका है। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि सबसे पहले इन भाषाओं पर शोध जार्ज अ. ग्रियरसन ने ही किया था जिसका उल्लेख 'Linguistic Survey of India' के चौथे खण्ड में देखा जा सकता है। आइए देखें इस भाषा-परिवार की व्याकरणिक विशेषताएँ।

ध्वनि व्यवस्था

(क) यूँ मूर्धन्य इस परिवार की विशेषता नहीं है परंतु अन्य भारतीय भाषाओं के प्रभाव में आकर सोरा/सवारा को छोड़कर लगभग सभी भाषाओं में मूर्धन्य ध्वनियाँ पाई जाती है।

(ख) श्वासद्वारीय स्पर्श (Glottalized Stops) ध्वनियाँ प्राय: शब्दों के अंत में जुड़ती हैं। इसके अतिरिक्त प्राय: हरेक भाषा में श्वास द्वारीय स्पर्श ध्वनि प्रयोग होता है।

(ग) अनुनासिकता, ठीक आर्य भाषाओं की भांति स्वनिमात्मक है। अर्थात् मौखिक एवं नासिक्य स्वर अर्थ भेदक हैं।

(घ) स्वर-संगति (Vowle harmony) की प्रचुरता है। उदा. खड़िया में ज + ई + ब = जीब क्रिया 'क्रिया' ज + ई + न + ई + ब = जीनीब (संज्ञा) 'छूना', ज + ओ + ब = जोब क्रिया 'चूसना' > ज + ओ + न + ओ + ब = जोनोब (संज्ञा) 'चूसना'।

(ङ.) खासी में नासिका ध्वनियों की प्रचुरता विशेषकर कंठ्य (Velar) नासिक्य की। अत: फंङ. 'खास', सिङ.अऊ 'सुनना' एवं सिङ.रङ. 'पुरुष'।

रूप व्यवस्था एवं शब्द रचना

(क) इस परिवार की भाषाओं में शब्द व्याकरणिक इकाइयों को जोड़-जोड़कर बनते हैं। अत: भाषाएँ योगात्मक हैं। देखिए खड़िया का निम्नलिखित वाक्य जहाँ हर व्याकरणिक सूचना को अलग करके देखा जा सकता है :

बोर नोहन ला की माए

बोर - नोह - ना - ला - की - माए

माँग - खा - ना - भूत - सतत - अन्य पु. बहुवचन

वे 'माँग कर' (भीख माँग कर) खाया करते थे।

एक तरह से देखा जाए तो शब्द और वाक्य में भेद करना भी मुश्किल होता है क्योंकि पूरा का पूरा एक पद वाक्य या मिश्र शब्द की भाँति प्रतीत होता है।

(ख) इन भाषाओं में शब्द संरचना के लिए मध्य-प्रत्ययों का प्रयोग प्रचुरता से होता है। अत: खड़िया में

क्रिया **संज्ञा**

जीव > जी - नी - ब 'स्पर्श'

जोब > जो - नो ब 'चूस'

जुड़ > जु - नु - ड़ 'पूछ'

कोल > को - नो - ल 'गिन'

(ग) लिंग का निर्धारण सजीव/निर्जीव के आधार पर होता, स्त्री/पुरुष के आधार पर नहीं।

(घ) वक्ता एवं संदर्भित व्यक्ति (या वस्तु) के बीच की दूरी के अनुसार संकेतवाचक सर्वनामों (demonstrative pronous) की प्रचुरता है। खड़िया में ग्यारह पुरुषवाचक सर्वनाम (Persnoal Pronouns) हैं।

(ड.) संस्कृत की भांति वचन तीन होते हैं - एक, द्वि एवं बहुवचन।

(च) कारक चिह्नों का अभाव है। पर उनके स्थान पर शब्दों की अदल-बदल से कारकीय संबंधों की सूचना मिलती है। अत: आर्य-भाषाओं की भांति पद-क्रम (Word order) अस्थिर (Free) नहीं हैं।

(छ) सबसे महत्पूर्ण बात यह है कि देश की ये ही भाषाएँ हैं जो पुनरुक्त शब्दों के माध्यम से नए शब्दों की उत्पत्ति करती है। पुनरुक्त शब्द (हर प्रकार के) इन भाषाओं में काफी मात्रा में मिलते हैं और पुनरुक्त शब्द व्यवस्था (reduplication process) इन भाषाओं की व्याकरणिक पद्धति का एक बहुत बड़ा एवं महत्वपूर्ण अंग है। उदाहरण के लिए देखिए खड़िया के कुछ शब्द :

आओं 'रहना' > आओं आओं कड़ 'निवासी'

तेर 'देना' > तेर तेर कड़' 'प्राप्त करने वाला'

डेल 'पहुँचना' > डेल डेल 'आगमन'

नोह 'खाना' (क्रि.) > नोह नोह 'भोजन'

वाक्य विन्यास

(क) इस परिवार की सभी भाषाएँ कर्ता-क्रिया-कर्म के शब्दक्रम का अनुसरण करती है पर पिछले कुछ सौ सालों में आर्य भाषाओं के प्रभाव के कारण इनमें परिवर्तन आया है। हाँ, कुछेक वाक्य संरचनाओं में पहले वाला क्रम देखने को भी मिल जाता है। खासी अब भी SVO कोटि में है। देखिए :

ऊ:	लेज	शा	का	स्कूल
वो	जाता है	को	निश्चयवाचक	स्कूल

'वो स्कूल (को) जाता है' (का निश्चयावाचक है)

यही कारण है कि इन भाषाओं में क्रिया विशेषण वाक्यांत में आते हैं, अत:

ऊ:	ला	रोड.	या	का	सोज
वो	भूत	पकड़	कर्म को (स्त्री)	निश्चयवाचक	ज़ल्दी से'

'उसने उसको (स्त्रीलिंग) ज़ल्दी से पकड़ लिया'

(ख) क्रिया के परसर्गों से नाना प्रकार के काल एवं पक्ष का बोध होता है। संथाली में 10 काल, 5 वृत्तियों, एवं 5 पक्षों का प्रावधान है। इन भाषाओं का वाक्य विन्यास काफी सरल एवं पारदर्शी होता है। सीखने की दृष्टि से इन भाषाओं को आसानी से सीखा जा सकता है।

25.7 तिब्बत-बर्मी परिवार

इस परिवार की भाषाओं की सबसे मुख्य विशेषता यह है कि वे आपस में बोधगम्य नहीं के बराबर हैं। यही नहीं, जितनी भाषाएँ एवं उपभाषाएँ एवं बोलियाँ इस परिवार में पाई जाती हैं उतनी कहीं और नहीं।

हमारे देश के उत्तर-पूर्वी भाग में बोली जाने वाली ये भाषाएँ शोध का विषय तो रही हैं पर देश के बाहर बोली जाने वाली भाषाओं पर अधिक काम हुआ है। सर्वप्रथम जार्ज ग्रियरसन ने ही इन भाषाओं पर कार्य किया, पर रॉबर्ट शेफर का 1955 में किया गया कार्य जिसमें उन्होंने पहली बार इस भाषाओं का वर्गीकरण किया, विशेष उल्लेखनीय है। बोडो, अंगामी, आओ, भोटिया, मेईते (मणिपुरी), लाहुली, किन्नौरी, डापला, काबुई, मीज़ो आदि भाषाओं पर स्वतंत्र भारत में काफी शोध हुआ है। आइए देखें इस परिवार की भाषाओं की व्याकरणिक विशेषताएँ।

ध्वनि व्यवस्था

(क) ये भाषाएँ तान भाषाएँ हैं (Tone Languages)। अत: विभिन्न प्रकार के तानों से शब्दों में भेद किया जा सकता है। उदाहरणतया देखिए ताड.खुल भाषा में एक ही शब्द विभिन्न तानों के कारण तीन भिन्न अर्थ दे रहा है :

कहुड. 'लाल' (उत्तान)

कहुड. 'सड़ा हुआ' (सम-तान)

कहुड. 'चूना' (नित्तान)

(ख) कंठस्थ स्पर्शों की प्रचुरता ही नहीं है वरन् वे अर्थ भेदक भी हैं। अत: मणिपुरी में मना का अर्थ है 'पत्ता' एवं /मड/ का अर्थ है 'पाँच', ना का अर्थ है 'कान' पर ड.ा। का अर्थ है 'मछली'। उसी प्रकार लन 'धन', पर लड. 'धागा'।

(ग) स्वर गुच्छों की प्रचुरता भी दिखाई देती है। अत: मणिपुरी में मऊउन 'चमड़ी, त्वचा', आइन 'नियम', मरूओयो बअ - 'महत्वपूर्ण'।

(घ) घोष स्पर्शी व्यंजन शब्दांत में नहीं आते। यही नहीं, महाप्राण घोषी व्यंजन मात्र उधार लिए शब्दों में ही आते हैं।

रूप एवं शब्द रचना

(क) ये भाषाएँ अयोगात्मक एवं समावेशक (Analytic and Incorporating) प्रवृत्ति की भाषाएँ हैं। अत: शब्द एवं वाक्यों को बड़े करीने से छोटे-छोटे भागों में प्रत्येक व्याकरणिक इकाई के अनुसार तोड़ा जा सकता है। मुण्डा परिवार की भांति ही इन भाषाओं में शब्द-पद एवं वाक्य पद का विभाजन बहुत स्पष्ट रूप से नहीं हो सकता। एक पूरा का पूरा वाक्य एक पद भी है और वाक्य भी। विभिन्न क्रिया-कलाप मात्र उपसर्गों एवं परसर्गों की मदद से उजागर होते हैं। उदाहरणतया तांड.खुल का एक पद देखिए :

लाचुड. नाचप 'आकर खूब जोर से रोना'

यह पद चार भागों में यूँ विभाजित हो सकता है ला 'आना', चुड. 'करवटें लेना' ना 'ढेर सारा', चप 'रोना'। जिस रोने की क्रिया का यहाँ जिक्र किया गया हैं उसका हिंदी में अनुवाद भी मुश्किल है क्योंकि यही एकमात्र भाषा परिवार है जहाँ एक-एक क्रिया को करने के ढंग 50-60 से कम नहीं। अर्थात आप पचास-साठ ढंग से रो सकते हैं, 70 ढंग से हँस सकते हैं, 30-40 ढंग से चल सकते हैं आदि-आदि। कहने का तात्पर्य यह है कि ये भाषाएँ हमारी दिनचर्या में हुई क्रियाओं का कई-कई प्रकार से अवलोकन करती हैं एवं उसको भाषा के माध्यम से उतारती हैं। यही कारण है कि इन भाषाओं में अनुकरणवाचक शब्दों की प्रचुरता है। विस्तार के लिए देखिए अब्बी एवं अह्म विक्टर (1977) का शोध कार्य।

(ख) संज्ञा एवं क्रियाओं में भेद भिन्न-भिन्न परसर्ग के प्रयोग से किया जा सकता है। अत: व्याकरण की इन दो इकाइयों को ये भाषाएँ सूक्ष्म (strict) ढंग से नहीं विभाजित करतीं जिस प्रकार हिंदी व अन्य भाषाएँ। अत: मणिपुरी में चा का अर्थ भोजन से भी हो सकता है और भोजन करने की क्रिया अर्थात 'खाने' से भी। प्रश्न परसर्ग का है। चा-बा संज्ञा है पर चा-ली क्रिया है। उसी प्रकार देखिए निम्नलिखित शब्द जो वास्तव में मूल अर्थ में एक ही हैं, परंतु प्रत्ययों के कारण भिन्न-भिन्न व्याकरणिक इकाइयों के बाँटा सकते हैं।

अ - कन - ब	शक्ति से संबंधित
कन - न	शक्तिशाली (वि.)
कन - ब	तेज़ (क्रि.वि.)
कन - ली	शक्तिशाली होना (विधेय)
मा - कन - ली	'वह शक्तिशाली है'

(ग) एक - एक शब्द कई-कई अर्थ संबंधी इकाइयों को जोड़कर बनता है अतः रौंगमई भाषा में गर्मी के लिए शब्द है तिड़ + अनम + गन (यहाँ यह तोड़कर दिया जा रहा है परंतु वास्तव में यह एक शब्द है), यानि 'वर्षा + गर्म + समय'-गर्मी।

वाक्य विन्यास

(क) शब्द क्रम है - कर्ता-कर्म-क्रिया।

(ख) वाक्य में प्रयुक्त क्रिया का मात्र दो कालों में विभाजन किया जाता है + भविष्यत् काल/भूतकाल एवं वर्तमान काल के भेद के लिए क्रिया-विशेषण जैसे शब्दों का प्रयोग होता है। अतः निम्नलिखित वाक्य कल और आज दोनों के लिए प्रयुक्त हो सकता है। भेदक क्रिया विशेषण ही है।

(1) ड.राड. अई सिनेमा अदु येड.-य

कल मैं सिनेमा वो देखा

'कल मैंने सिनेमा देखा'

(2) ड.सी अई सिनेमा अदु येड.-य

आज मैं सिनेमा वो देख

'आज मैं सिनेमा देख रहा हूँ'

(ग) चूँकि कारक चिह्न संज्ञा शब्दों के साथ लगते हैं अतः शब्द क्रम में अदल-बदल किया जा सकता है। अतः मणिपुरी में

(i) आई-ना तोम्बा-दा लाइरीक अमा पी

मैं-कर्ता तोम्बा-को किताब एक दे

'मैं तोम्बा को किताब देता हूँ/दी थी'

सही वाक्य "तोम्बा दा आई ना लाइरिक ...." रूप में भी बोला जा सकता है। अर्थ की दृष्टि से कोई अंतर नहीं पड़ता।

25.8 भाषा क्षेत्र की परिकल्पना

भारतवर्ष के प्रमुख भाषा-परिवारों की भाषायी विशेषताएँ समझ लेने के बाद एक प्रश्न उठता है। क्या ये सभी भाषाएँ अपने आप में अलग-अलग हैं या कहीं किसी व्याकरणिक पक्ष पर ये भाषाएँ एक-दूसरे की बहनें प्रतीत होती हैं? चिरकाल से चली आ रही द्विभाषिता एवं भाषा-सम्पर्क ने आज यह स्थिति पैदा करती है कि भारतीय भाषाएँ भिन्न होने पर भी (याद कीजिए कि देश में 1652 भाषाएँ बोली जाती हैं।) व्याकरणिक दृष्टि से काफी समान हैं। जब दो भाषाएँ पड़ोसी हो जाती हैं तो यह स्वाभाविक है कि उनमें हर प्रकार का आदान-प्रदान स्थापित हो जाता है। सैकड़ों वर्षों से चली आ रही भाषायी-सम्पर्क स्थिति पहले कुछ समान शब्दावली को और फिर धीरे-धीरे समान भाषा की संरचना के नियमों को जन्म देती है। एक समय ऐसा भी आता है कि दो भिन्न भाषा-परिवार की भाषाएँ आपस में इतनी मिलने-जुलने लगें जितनी वे अपने ही परिवार की अन्य भाषाओं से नहीं। भारत की भाषाओं में ठीक यही स्थिति उत्पन्न हो

गई है। आज हिंदी और तेलुगु में ज्यादा व्याकरणिक समानताएँ हैं अपेक्षाकृत हिंदी एवं अंग्रेजी में (हालांकि अंग्रेजी भी हिंदी की भांति भारोपीय परिवार की सदस्य है)। 1959 में प्रो. एम. बी. एमेनो ने अपने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं चर्चित लेख 'Indian an a Linguistic Area' में सर्वप्रथम इस प्रकार की समानताओं की तरफ हमारा ध्यान आकर्पित किया था। 1956 के बाद इस विपय पर काफी शोध हो चुका है और भापा के भिन्न-भिन्न पक्षों का गहनता से अध्ययन करने के बाद मसीका (1974), पीटर हुक (1977, 1982), अब्बी (1992) के शोध से प्रमाणित हो चुका है कि भारतीय कॉलिन भापाएँ भिन्न-भिन्न परिवारों की एवं भिन्न-भिन्न भू-भागों में बोले जाने के बावजूद भी एक-दूसरे के इतनी समान है कि 'भारत की भापा' जैसी इकाई में बाँधी जा सकती हैं। अनेकता में एकता का इससे उत्तम उदाहरण सामने न होगा। अर्थात् यदि कोई जानना चाहे कि भारत की भाषाओं की विशेपता क्या है या फिर ऐसा क्या है जो उन्हें विश्व की अन्य भापाओं से अलग करता हो तो हम निम्नलिखित व्याकरणिक गुणों को उल्लेख करेंगे। इन गुणों को समझने से पहले 'भापाई क्षेत्र' की परिभाषा समझ लेनी चाहिए।

भापाई क्षेत्र अथवा 'Linguistic Area' की शब्दावली सर्वप्रथम प्रो. वाल्टेन ने 1943 में की थी। इससे पहले 1928 में सुप्रसिद्ध भापावैज्ञानिक त्रुबेत्सकॉय ने Sprachbund (भापा-गुच्छ) जैसे शब्द का प्रयोग किया था। भापा-गुच्छ के स्थान पर अब भाषाई-क्षेत्र ही अधिक प्रयोग में लाया जाता है और इसको प्रचलित करने का श्रेय जाता है एम.बी. एमनो' को जिन्होंने सर्वप्रथम 'भारत एक भापाई क्षेत्र' जैसा महत्वपूर्ण लेख लिखा और कई-कई व्याकरणिक समानताओं का उल्लेख किया। उनके मतानुसार, 'भाषाई-क्षेत्र वह क्षेत्र है जहाँ विभिन्न भापा-परिवारों की भापाओं के एक स्थान पर बोले जाने के कारण इनमें कुछ ऐसी व्याकरणगत विशेपताएँ उत्पन्न हो जाती हैं जो इन भापाओं के परिवार की अन्य भापाओं में नहीं मिलतीं।'

अर्थात् ऐसी व्याकरण-गत विशेपताएँ जो एक क्षेत्र-विशेप की विभिन्न परिवार की भापाएँ आपस में बाँटें, वे 'क्षेत्रीय विशेपताएँ' कहलाती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि पारिवारिक रूप से भिन्न-भिन्न होने के वावजूद जब भापाएँ एक-दूसरे के सम्पर्क में आती हैं तो व्याकरण की दृप्टि से एक-दूसरे के समीप आ जाती हैं। अत: आपस में अनेक भापाई विशेषताएँ बाँटने लगती हैं। जब एक भापा, दूसरी भापा के सम्पर्क में आकर उसकी ओर खिंचती है तो ज़ाहिर है कि वह धीरे-धीरे अपने ही परिवार की अन्य भाषाओं से दूर होने लगती हैं। इस प्रकार, एक भापा दूसरी भाषा की ओर converge हो जाती है पर अपने परिवार की अन्य भाषाओं में diverge होने लगती है। कहने का तात्पर्य यह है कि सक्रिय बहुभापिता का परिणाम 'भापाई-क्षेत्र' ही होता है। यह प्राय: देखा गया है कि एक विशेप भाषाई-क्षेत्र की भापाओं का व्याकरण काफी मात्रा में परस्पर मिलता-जुलता है। भारत एक ऐसा ही भापाई-क्षेत्र है जहाँ निम्नलिखित व्याकरण-गत विशेपताएँ प्राय: हर भापा में पाई जाती है।

(क) कर्ता-कर्म-क्रिया शब्दक्रम

(ख) कारक चिन्ह जो संज्ञा के पश्चात् लगते हैं, अर्थात् परसर्ग

(ग) मूर्धन्य ध्वनियाँ

(घ) कृदन्त विशेषण

(ड.) शब्द रूपात्मक प्रेरणार्थक क्रियाएँ

(च) पुनरुक्त शब्द संरचना

(छ) अनुकरणवाचक शब्द संरचना

(ज) प्रतिध्वनि शब्दसंरचना

(झ) रंजक क्रिया

(ट) संप्रदानीय संरचनात्मक पद

आइए हम इन के बारे में संक्षेप में अध्ययन करें।

(क) कर्ता-कर्म-क्रिया (SOV) शब्दक्रम

प्राय: सारी की सारी भारतीय भाषाएँ इन क्रम का अनुसरण करती हैं और साथ ही साथ विशेष क्रम में निहित अन्य भाषाओं का भी अनुकरण करती हैं (जैसे विशेषण का विशेष्य से पहले आना, आदि।) हम हर भाषा -परिवार की एक-एक भाषा के उदाहरण लेकर अपने कथन की पुष्टि कर सकते हैं।

1. पंजाबी : मैं माक्की दी रोटी खांदी।

   'मैंने मक्की की रोटी खाई'।

2. तेलुगु : कमला पूलु कोस्तुन्नदि।

   'कमला फूल तोड़ रही है।'

3. सन्थाली : ऊनी होड़ को तौल के दिया।

   उन्होंने (उस) आदमी को बाँध दिया।

4. मणिपुरी : थाड.न थीन दत लेई।

   चाकू-से घुपा (कर) विच्छिन्न किया।

   'उसके चाकू से मार डाला।'

(ख) परसर्ग

कारक चिन्ह संस्कृत की परंपरा में संयुक्त विभक्ति के रूप में न होकर पृथक रूप में संज्ञा के बाद लगते हैं। देखिए फिर से संबंध कारक चिन्ह /दी/ पंजाबी वाक्य (1) /को/'कर्म कारक चिह्न' सन्थाली में (3), एवं /न। 'करण कारक चिन्ह' मणिपुरी वाक्य (4) - जो संज्ञा के पश्चात् लगे हैं। तेलुगु /पूलु/ फूल में हिंदी की ही तरह कर्मकारक चिह्न का लोप है।

(ग) मूर्धन्य ध्वनियाँ

भारत की लगभग सभी भाषाओं में मूर्धन्य ध्वनियाँ ट, ड, एवं ण हैं। इनके महाप्राण घोष/अघोष रूप अर्थात् ठ, ढ, ड़ केवल आर्य भाषाओं में व ळ दक्षिण की द्रविड़ एवं पश्चिमी भारत की भाषाओं में पाए जाते हैं। देखिए फिर से मानचित्र संख्या 2.

(घ) कृदंत विशेषण

कृदंत-पूर्वकालिक (Conjuctive Participle) प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त होते हैं। जब दो या दो से अधिक क्रियाओं के होने का बोध होता है तो मूल क्रिया के घटने के समय से पहले के व्यापार को कृदंत रूप में (हिंदी में 'कर') सूचित किया जाता है। अत:

1. 'बाबू जी खाना **खाकर** घूमने गए।' जैसे वाक्य में 'खाना खाना' वाली क्रिया 'घूमने जाने' वाली क्रिया से पहले उद्घाटित होती है। अत: कृदंत 'कर' पहली वाली क्रिया में लगता है। किसी-किसी भाषा में एक ही वाक्य में कई पूर्वकालिक कृदन्तों का प्रयोग होता है। अत:

1.1 बाबू जी खाना **खाकर**, कपड़े **बदलकर**, छाता **लेकर** घूमने गए।

ऐसी स्थिति सभी भारतीय भाषाओं में हैं। जहाँ हिंदी में पूर्वकालिक कृदन्त 'कर' लगता है वही मराठी में - ऊन, सन्थाली में - काटे, तेलुगु में - ई, कन्नड़ में ऊ/ई, तमिल में - ऊ एवं मलयालम में - ए/ऊ प्रत्यय क्रियाओं में लगते हैं। कुछ भाषावैज्ञानिक कृदन्त प्रत्ययों को द्रविड़ भाषा की देन मानते हैं। इनके मतानुसार संस्कृत जब द्रविड़ परिवार के सम्पर्क में आई तब संस्कृत में कृदन्तों का जन्म हुआ। द्रविड़ भाषाओं में आज भी कृदन्तों का प्रयोग बहुत व्यापक है। उदाहरण के तौर पर, 'किसी के निमित्त' के अर्थों में जहाँ हिंदी में कृदन्त का निषेध है, वहाँ द्रविड भाषाओं में विपुलता है। अत: निम्नलिखित वाक्य शब्दश: मलयालम वाक्य का अनुवाद है जो हिंदी भाषी के कानों को अखरता हैं।

(i) नम्बियार कह कर मेरे बेटे को नौकरी मिली। (अर्थात् नंबियार ने कहा, इसलिए ....)

(ड.) प्रेरणार्थक क्रियाएँ

जिस प्रकार हिंदी में सरल एवं प्रेरणार्थक क्रियाओं का रूप-प्रत्यय योजनमूलक है उसी प्रकार अन्य भारतीय भाषाओं में भी। अर्थात् हिंदी में :

सिल - ना	सिला - ना	सिल - वाना
खिल - ना	खिला - ना	खिल - वाना
रो - ना	रुला - ना	रुल - वाना
पी - ना	पिला - ना	पिल - वाना
कर - ना	करा - ना	कर - वाना

तीसरे कॉलम में दिए गए सब रूपों में कर्ता वास्तविक कर्ता न होकर प्रेरक रूप में प्रयोग होता है। प्रेरणार्थक क्रिया रूपों में - **वाना** प्रत्यय लगता है और मूल धातू में ध्वनि संबंधी कुछ परिवर्तन होते हैं। भारत की अन्य भाषाओं में भी प्रेरणार्थक क्रियाएँ एक विशेष प्रत्यय के जुड़ने से बनती हैं। अत: सिंहली में **यनवा** 'जाना' पर **यन - वा - नवा** 'भेजना'; **हदनवा** 'बनाना' पर **हदन-वा-नवा** 'बनवाना'। मुण्डा परिवार की भाषाएँ उपसर्ग एवं मध्य प्रत्यय का सहारा लेती हैं। अत: खड़िया में **भोरे** 'भरा हुआ', **भो-ब-रे** 'भरना'; सोरा में **सुक्का** 'खुश होना', **अबसुक्का** 'सुख करना' आदि। द्रविड़ भाषाएँ बहुत कुछ आर्य भाषाओं की भाँति ही परसर्गीय-रूपिम का प्रयोग करती हैं। हाँ, इस रूपिम के व्यंजनों में संधि हो जाने की स्थिति में रूप-स्वनिम परिवर्तन आ जाता है। अत: तमिल में परा 'फैलना' पर **पटट्टु**, 'फैलाना', **तुयिल** 'सोना' पर **तुयिन्डु** 'सुलाना' आदि। **प्पू** या - **व** भी ट्टु का ही **allomorph** है। अत: **कीटा** - 'पड़ा होना' पर **कीटा-ट्टू/कीटा-प्पू** 'रखना, डालना'।

(च) पुनरुक्त शब्द संरचना

यह शब्द रचना भारतवर्ष की विशेष एवं महत्वपूर्ण रचना हैं। इसलिए हम इस पर तनिक विस्तार से गौर करेंगे। शब्द रचना की प्राय: तीन पद्धतियाँ मानी जाती हैं : (1) रूपायन या प्रसिद्वि (inflection;) (2) व्यत्पत्ति (derivation) एवं (3) समास (compounds)। एक चौथी पद्धति जोकि समूचे दक्षिण एशिया एवं दक्षिण-पूर्व एशिया में अत्यधिक प्रचलित है और जिसकी ओर भारतीय एवं पश्चिम के विद्वानों का ध्यान कम गया है वह है पुनरावृत्ति। पुनरावृत्ति से हमारा आशय है किसी भी शब्द कोटि के पूर्ण एवं आंशिक भाग की पुनरावृत्ति जो शब्द के अर्थ में परिवर्तन ले आए। अर्थात् पुनरुक्त शब्द कोटि अपने अ-पुनरुक्त शब्द की तुलना में अर्थपरक भिन्नता लिए होती है। यही नहीं, अ-पुनरुक्त शब्द की भांति पुनरुक्त शब्द भी अपने आप में एक शाब्दिम (lexeme) होता है और प्राय: एक ही संरचनात्मक इकाई भी। मसलन 'बच्चा' एवं 'बच्चा-बच्चा' (हर एक बच्चा) या फिर सन्थाली में दाल 'मारना'; दादाल 'रोज-रोज़ मारना'। हिंदी का उदाहरण पूर्ण पुनरावृत्ति का है जबकि सन्थाली का शब्द आंशिक पुनरावृत्ति का उदारहण है। सन्थाली का **दादाल** एक इकहरी संरचनात्मक इकाई हैं क्योंकि कोई भी प्रत्यय इस शब्द के आगे या पीछे लग सकता है। वास्तव में **बच्चा-बच्चा** एवं **दादाल** दोनों ही एक-एक शब्द हैं।

शाब्दिक पुनरावृत्ति को तीन भागों में बाँटा जा सकता है देखिका तालिका:
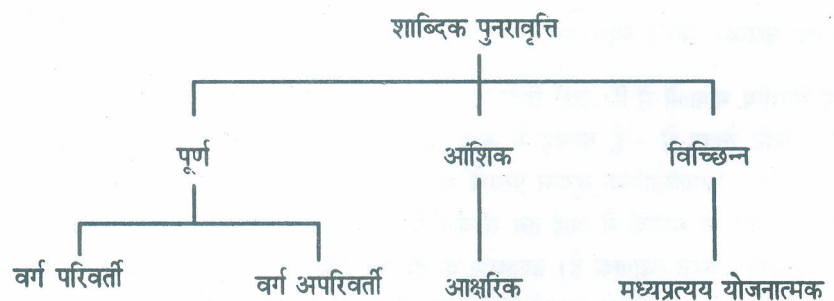
भारतवर्ष की ऐसी कोई भाषा या उपभाषा न होगी जहाँ शाब्दिक पुनरावृत्ति न मिलती हो। और इनमें भी सबसे व्यापक एवं प्रचलित है पूर्ण शाब्दिक पुनरावृत्ति। ऐसी कोई व्याकरणिक कोटि नहीं है जो पुनंरावृत्ति

की जकड़ में न हो। संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया-विशेषण, क्रिया आदि सभी कोटियाँ बखूबी पुनरक्त रूप में पाई जाती है। हाँ क्रिया की पुनरुक्ति, विशेषकर विधेय क्रिया के रूप में हिंदी एवं अन्य आर्य भाषाओं में नहीं पाई जाती (उदाहरण - मैं घर गया गया नहीं कह सकते) परंतु ऑस्टो-एशियाई में एवं कुछेक तिब्बती-बर्मन भाषाओं में विधेय रूप में क्रिया की द्विरुक्ति संभव है। कई बार ऐसा देखा गया है कि एक ही वाक्य में कई-कई पुनरक्त शब्दों का प्रयोग होता है। जैसे ताइजान्ग (ति.ब.) में:

केई-के	प प-ओई	नन्ग - न - स्ना	सै सै - म
मैं मैं	जा जा	तुम तुम काम	कर कर

'चूँकि तुम काम में व्यस्त हो (करते ही जा रहे हो) मैं तो चली।'

अन्य भाषाओं में जब क्रिया की पुनरुक्ति होती है तो वे क्रिया-विशेषण का कार्य करती है, उदाहरणतः

1. मैं **बैठे बैठे** थक गया।

2. वो **चलते चलते** गिर पड़ा।

चूँकि क्रिया अपने पुनरुक्त रूप में क्रिया-विशेषण का कार्य कर रही है, इसे हम वर्ग परिवर्ती पूर्ण शाब्दिक पुनरावृत्ति कहेंगे। इस कोटि में वे सारे शब्द जो पुनरुक्त रूप में परिवर्तित होने के पश्चात् अपनी व्याकरणिक इकाई को त्याग कर दूसरी व्याकरणिक इकाई में प्रवेश कर जाते हैं, शामिल हैं। मुण्डा भाषाएँ इस विधा से अनेकानेक शब्दों का गठन करती हैं। देखिए तालिका :

खड़िया

क्रिया

बोर 'माँगना' ; बोर बोर 'भीख माँगना'; बोर बोल लेब 'भिखारी' (सं.)

नो 'खाना'; नो नो 'दायाँ हाथ' (सं.)

आओ 'देखना'; आओ आओ 'घूरना'; आओ आओ कर 'घूरने वाला' (सं.)

गोएज 'मरना' ; गोएज गोज 'मरणासन्न' (वि.)

जुंग 'पुछना' ; जुंग जुंग डांग 'सगाई' (सं.)

चोल 'चलना'; चोल चोल 'गमन', 'प्रस्थान' (सं.)

पुनरुक्त शब्दों की व्यापकता देखने के लिए नीचे दिए गए वाक्य बहुत रोचक सिद्ध होंगे जो विभिन्न भारतीय भाषाओं से लिए गए हैं-

आर्य

हिंदी	:	वो बैठे-बैठे थक गया।
बंगला	:	शे बोशे-बोशे हाँपिए ऊठे छे।
कश्मीरी	:	सू थो बीह बीह।
सदरी	:	ऊ बइठे-बइठे थइक गेलक।

तिब्बी-बर्मी

मणिपुरी	:	महाक फम-न फम-न चोक थरमई
पाइते	:	अमा तू तू-लाई अपुक्ता

मुण्डा

मुण्डारी	:	एनहोड़े दूब दूब लागाइन

खड़िया	:	होकर दोको थक्के गोटकी

द्रविड़

कन्नड़	:	अवनु कूत्तु-कूत्तु सुस्तानु
कुडुरु	:	अस बोन्ते बौन्ते खड़ दियस केरस

(ये सभी वाक्य हिंदी वाक्य का अनुवाद हैं।)

(छ) अनुकरणवाचक शब्द संरचना (Onomatopoeic/Expressive Morphology)

कई बार ऐसा प्रतीत होता है कि पुनरावृत्ति की लपेट में मात्र एक अक्षर (Syllable) ही आता है जिसका स्वतंत्र रूप में उस भाषा में कोई अस्तित्व नहीं होता। हाँ, पुनरुक्त होकर ही वह शब्द का रूप धारण करता है। उदाहरणतया अनुकरणवाचक शब्द, जैसे सर-सर, कल-कल, फर-फर, ही-ही, चम-चम, दादा, बाबा। इसमें चम, दा, फर, बा अपने आप में शब्द-रूप नहीं हैं, अर्थात् ये स्वतंत्र शब्द के रूप में प्रयुक्त नहीं हो सकते। जहाँ बोल-चाल की भाषा में पाए भी जाते हैं वहाँ वे पुनरुक्त शब्द से छोटे किए हुए रूप की स्थिति में। अर्थात् इस प्रकार की पुनरुक्त शब्द की संरचना में किसी पहले से मौजूद शब्द भाग नहीं लेते हैं वरना पुनरुक्त अक्षर (syllable) ही अपने आप में शब्द का रूप धारण कर लेता है। इसे हम रूपात्मक पुनरावृत्ति (Morphological Reduplication) के नाम से जानते हैं। रूपात्मक पुनरावृत्ति की यह विशेषता है कि पुनरावृत्तिक इकाई एक रूपिम (morpeme) भी है और एक शाब्दिम (lexeme) भी, और एक शब्द भी। हमारे देश की भाषाओं में पाई जाने वाली बंधुतावादी शब्दावली (जैसे दादा, नाना, चाचा, मामा, बाबा आदि) और पंचेंद्रियों की बोधता दर्शाने वाले शब्द रू.पु. से ही गढ़े जाते हैं। यह अजीब और दिलचस्प भाषाई समानता है कि हम सब अपनी-अपनी भावनाओं को और पाँचों इंद्रियों से महसूस करने वाली शक्तियों को रूपात्मक पुनरावृत्ति वाले शब्दों से व्यक्त करते हैं।

अत: हिंदी में **टप-टप**, 'पानी की बूँदों का बरसना', **खी-खी** 'एक तरह का हँसना' **चम-चम** 'चमकना', **चिरपिरा** या **चरपरा**, तमिल में **गम-गम** 'सुगन्धित' एवं नेपाली में **चयात-चयात** 'चिपचिपा' अनुकरणवाचक शब्द हैं। इस प्रकार के शब्द सभी भाषाओं में पाए जाते हैं। खासी एवं अनेकानेक तिब्बती-बर्मन परिवार की भाषाएँ इस पद्धति से नाना प्रकार के क्रिया विशेषण बनाती हैं। अत: खासी में लगभग 60 तरह के अनुकरण-वाचक शब्द हैं जो मात्र रोने की क्रिया का विशेषण बनते हैं। खासी में **'इयाद बक बक'** जल्दी-जल्दी चलने' को कहते हैं पर **'इयाद दोन-दोन'** 'बच्चे की भांति ठुमकना', **इयाद वेंग-वेंग** 'झूमना', **इयाद तोइन तोइन** 'बेखटके चलना', **इयाद तुईन तुईन** 'हिचकिचाते हुए चलना' आदि नाना प्रकार के विशेषण जोड़े जा सकते हैं।

(ज) प्रतिध्वनि शब्द संरचना (Echo Word Formation)

ऐसे शब्द जिनमें शब्द का एक भाग मात्र पहले शब्द की प्रतिध्वनि हो, उसे प्रति-ध्वनि शब्द कहते हैं। हिंदी में चाय-वाय, पानी-वानी, गाना-वाना, बैठना-वैठना, पंजाबी में रोटी-शोटी, काम-शाम, पढ़ना-शढ़ना, बंगला में खान-पान, चूल-टूल आदि प्रति ध्वनि शब्दों के उदाहरण हैं। इस संरचना में दूसरा शब्द अपने आप में निरर्थक होता है। पर पहले सार्थक शब्द के साथ जुड़ने के बाद शब्द संरचना का अर्थ हम 'आदि' या 'उससे मिलता-जुलता' के अर्थ में ले सकते हैं। अत: हम यह कहें कि 'वह कलम-वलम लेने बाज़ार गया है अर्थ 'कलम जैसी चीजें' अर्थात् stationery से भी हो सकता है। द्रविड़ भाषाओं में प्रति-ध्वनि शब्द प्राय: - गि उपसर्ग से बनते हैं। अत: तमिल में पंदु-गिंदु 'गेंद-वेंद', तेलुगु में तोन्दरगा गिन्दरगा 'जल्दी-वल्दी' आदि।

(झ) रंजक क्रिया (Compound Verbs)

दो धातुओं से बनने वाली वे क्रियाएँ जिनमें मूल धातू मात्र एक ही होती है जो कोशीय अर्थ प्रदान करती है एवं दूसरी धातु मूल धातु में कई-कई अर्थपरक विशेषताएँ जोड़ देती है। अत: रंजक कहलाती हैं। उदाहरणत: 'सुंदर दृश्य देखकर वह गा उठी' में उठी रंजक क्रिया है और मूल धातु 'गाना' में 'सहसा या आकस्मिम ढंग से' जैसे अर्थ को जोड़ती है। रंजक क्रियाएँ देश की हर भाषा में पाई जाती हैं। इनके प्रयोग मूलत: चार कार्यों में होते हैं।

(1) पक्ष-द्योतक (Perfectivity) के अर्थ में

(2) व्यावहारिक क्रिया-विशेषण के अर्थ में

(3) अन्य क्रिया-विशेषण के अर्थ में; एवं

(4) अभिवृत्ति के अर्थ में।

आइए हर एक प्रयोग के कुछ उदाहरण देखें। इस बात का ध्यान रहे कि रंजक क्रिया हर भाषा में अलग-अलग प्रकार की हो सकती है।

1. पक्ष-द्योतक (संपूर्ण-वाचक) (Perfect Apect)

हिंदी : बूढ़ा हाथी मर गया। (मर+जाना)

तेलुगु : अतनु मिठाई मोत्तम तीनि वेसाडू

वह सारी मिठाई खा गया (खा + फेंक या डाल)

2. क्रिया-विशेषण (व्यावहारिक)

हिंदी : राजू फिल्म देखकर रो पड़ा। (रो + पड़ा, विशेपता)

मलयालम : राजू सिनिमा कण्डुं करञ्ञु पोई (रो+जा, विवशता)

3. क्रिया विशेषण (अन्य)

हिंदी : चिट्ठी पढ़ लो। (मन ही मन)

चिट्ठी पढ़ दो। (जोर से ताकि दूसरे भी सुनें)

4. अभिवृत्ति

हिंदी : यह मैं क्या कर बैठी ! (पश्चाताप)

मलयालम : नोक्की कोळ्ळु ! अवल इप्पोल ओरु एलुति तल्लुम

देख लो : अब कविता लिख रही है। (लिख + धकेल, चिढ़ाना, संदिग्ध)

रंजक क्रियाओं का प्रयोग अधिकतर क्रिया के पूर्ण रूप के होने के पक्ष (पूर्णतावाची) से होता है और इसी प्रयोग में यह देश की अनेकानेक भाषाओं में पाई जाती है। इस पक्ष को प्राय: 'जाना' क्रिया आर्य भाषाओं में एवं 'फेंक' और 'थाम' जैसी क्रियाएँ द्रविड़ भाषाओं में उद्घाटित करती है।

(ट) सम्प्रदानीय संरचनात्मक पद (Dative-Subject Constructions)

जब वाक्य में कर्ता सम्प्रदान कारक का चिह्न लिए हुए हो पर कर्म कर्ता की भूमिका में हो तो वाक्य सम्प्रदानीय पद (Dative-Subject Construction) कहलाता है। उदाहरणत: 'राम **को** प्यार हो गया हैं।' वास्तव कोई आवश्यक नहीं है कि हर भाषा में ऐसे अ-साधक संज्ञा को सम्प्रदान के कारक चिह्न से ही दर्शाया जाए (उदाहरणत: बंगला में संबंधकारक और, हिन्दी में कर्म कारक चिह्न प्रयोग में लाए जाते हैं)। इन पदों की विशेपता यह है कि इनमें कर्ता साधक नहीं होता अपितु साध्य होता है पर होता कर्ता के स्थान पर, वाक्य के शुरू में। इस अ-साधक कर्ता को कोई भी तिर्यक चिह्न लग सकता है पर अर्थपरक दृष्टि से यह कर्ता या तो अनुभवकर्ता (experencer) होता है या प्राप्तिकर्ता 'benefactor' या 'recipient' या फिर मात्र उसका अस्तित्व भर होता है। ऐसी संरचना में कर्ता 'ऐच्छिक' रूप से कुछ नहीं करता। देखिए नीचे दिए गए उदाहरण।

हिंदी : **मुझे** नींद आ रही है। (तिर्यक रूप, संप्रदानकारक)

कन्नड़ : **ननगे** निद्दे बरुत्तिदे (तिर्यक रूप, संप्रदानकारक)

खासी : ङा स्नअऊ समथ्या (साधारण रूप)

बंगला : ओर लोज्जा होच्चे (तिर्यक रूप, संबंधकारक)

'उसको शर्म आ रही है।'

वे सारी क्रियाएँ जो हमारे शारीरिक एवं मानसिक अनुभवों को लक्षित करती हैं, वाक्य में प्रयुक्त कर्ता को अ-साधक रूप में, जो किसी न किसी तिर्यक रूप में दिखाई देता है, उद्घाटित करती हैं। अतः 'राम को गुस्सा आया/बुखार आया/शर्म आई/प्यास लगी/नींद आई' में राम जो अ-साधक है तिर्यक रूप में कर्म कारक चिह्न 'को' लिए हुए है।

उपरोक्त विशेषताएँ इस बात की तो द्योतक हैं ही कि हमारा देश बहुभाषी भी रहा है एवं अनेक भाषा-भाषियों में आदान-प्रदान भी होता रहा है। इसके साथ-साथ इस कथ्य को भी उजागर करता है कि आज भारतीय भाषाओं की एक पृथक अस्मिता है जो हमें विश्व की अन्य भाषाओं से अलग हटकर विश्लेषण करने पर बाध्य करती है। भारत की अनेक भाषाओं की अपनी-अपनी विशेषताएँ तो हैं ही, साथ-साथ इन सभी भाषाओं में ऐसे गुण भी हैं जो भारत के 'भाषा-क्षेत्र' के अपने निजी विशेष भाषा संबंधी गुण हैं। इस अर्थ में भारतीय भाषाएँ एक-दूसरे को एक कड़ी में जोड़ती हैं और हमारे समान चिंतन और समान अभिवृत्ति को उजागर करती है।

25.9 सारांश

संसार की कुल भाषाओं की संख्या लगभग 4000 है। इस भाषाओं के वर्गीकरण के दो आधार हो सकते हैं:

क) आकृतिमूलक वर्गीकरण

ख) पारिवारिक वर्गीकरण

पारिवारिक वर्गीकरण के आधार हैं - आधारभूत शब्दावली, उच्चारण की विशेषताएँ, रूप तत्व, शब्द रचना और वाक्य संरचना के तत्व। यह माना जाता है कि एक परिवार की भाषाओं में ये तत्व समान रूप से मिलते हैं। आकृतिमूलक वर्गीकरण भी परिवार की संकल्पना में सहयोग देता है। परिवार की संकल्पना के आधार पर भाषा वैज्ञानिकों ने संसार में निम्नलिखित नौ परिवारों की बात की है:

1. भारोपीय परिवार
2. सामी-हामी परिवार
3. द्रविड़ भाषाएँ
4. आस्ट्रिक
5. फिनो-उग्रिक
6. अल्ताई
7. चीनी-तिब्बती परिवार
8. काकेशियन भाषा परिवार
9. अमेरिकी भाषाएँ

भारत में लगभग 1650 भाषाएँ बोली जाती हैं। ये भाषा विश्व के चार प्रमुख भाषा परिवारों से संबद्ध है।

भारत के भाषा परिवार निम्लिखित हैं :

1. भारतीय आर्यभाषाएँ (भारोपीय परिवार की शाखा)
2. द्रविड़ भाषा परिवार

3. मुंडा या कोल भाषाएँ (आस्ट्रिक परिवार की शाखा)

4. तिब्बत-बर्मी भाषाएँ (तिब्बत-चीनी परिवार की शाखा)

इन चारों परिवारों की अपनी-अपनी विशेषताएँ है। तिब्बत-चीनी भाषा परिवार की भाषाएँ अयोगात्मक (analytic) कहलाती हैं, क्योंकि इन भाषाओं में संज्ञा, क्रिया आदि शब्दों के प्रत्यय, उपसर्ग आदि लगने के रूप परिवर्तन नहीं होता। तान (tone) का उच्चारण इस परिवार की दूसरी बड़ी विशेषता हैं।

शेष तीन परिवार योगात्मक (synthetic) हैं, क्योंकि इनमें धातु से प्रत्यय आदि की सहायता से शब्द के विभिन्न रूप बनते हैं। आर्य भाषाएँ संश्लिष्ट हैं, क्योंकि धातु और रूप तत्व इतने मिल जाते हैं कि उन्हें पहचाना नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए - संस्कृत के/बालकभ्य:/ में धातु 'बालक', पुल्लिंग, बहुवचन, संप्रदान विभक्ति चारों अर्थ तत्व मिलजुल गए हैं और उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। हिंदी जैसी आधुनिक भाषाओं में संश्लिष्टता कुछ कम है और रूप तत्व मूल अलग लिखे जा रहे हैं।

द्रविड़ भाषाएँ अश्लिष्ट योगात्मक (agglutinating) हैं। अर्थात् इनमें धातु में प्रत्येक व्याकरणिक अर्थ के लिए रूप जुड़ते जाते हैं। जैसे

वीडु	+	कळ	+	ऐ
घर		बहुवचन		कर्मकारक

मुंडा भाषाएँ मूलत: कर्ता-क्रिया-कर्म के पदक्रम वाली थी, लेकिन अन्य भाषाओं के प्रभाव के कारण अब कर्ता-कर्म-क्रिया का पदक्रम प्रचलित हो चला है। शब्द के बीच में मध्य प्रत्यय इसकी विशेषता है।

इकाई के अंत में उन विशेषताओं का उल्लेख किया गया है, जो प्राय: सभी भाषाओं में दिखाई देती है। जैसे

1. प्राय: सभी में कर्ता-कर्म-क्रिया का क्रम है।

2. सभी में (कश्मीरी छोड़कर) परसर्ग का प्रयोग होता है।

3. मूर्धन्य ध्वनियाँ

4. प्रेरणार्थक क्रियाएँ

5. रंजक क्रियाएँ

ये विशेषताएँ प्राय: सभी भारतीय भाषाओं में है। शब्द रचना के संदर्भ में 6) पुनरुक्त शब्द 7) अनुकरणवाचक शब्द और 8) प्रतिध्वनि शब्द आदि की संरचना भी अखिल भारतीय है। वाक्य संरचना के संदर्भ में 9) /को/ वाले कर्ता के वाक्य (जैसे मुझे किताबा मिली/मुझे दुख है आदि) भी भारत की भाषाओं की ही विशेषता है।

25.10 अभ्यास प्रश्न

1. निम्नलिखित प्रश्नों के लगभग 250 शब्दों में उत्तर लिखिए।

   i) संसार के भाषा परिवारों का परिचय दीजिए।

   ii) भारतीय आर्य भाषा परिवार का परिचय दीजिए।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के लगभग 500 शब्दों में उत्तर लिखिए।

   iii) भाषा के भाषा परिवारों का वर्णन कीजिए।

   iv) भारत की भाषाओं की सामान्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

इकाई 26 भारोपीय परिवार और भारतीय आर्य भाषाएँ

इकाई की रूपरेखा

26.0 उद्देश्य

हमारे लिए यह जानना उपयोगी होगा कि हिंदी का विश्व की भाषाओं से क्या संबंध है? इस प्रश्न के संदर्भ में ही हिंदी भाषा के आदि, सुदूर स्रोत, जो उसे संसार की अन्य भाषाओं से संबद्ध करते हैं, उन पर विचार करने का अवसर मिलेगा और इससे हम हिंदी को उसके व्यापक परिप्रेक्ष्य में रख सकेंगे। हिंदी की जननी संस्कृत है। संस्कृत का ग्रीक, लैटिन, अवेस्ता से ऐतिहासिक अर्थात् पारिवारिक संबंध है। इस भाषाओं के इतिहास का अध्ययन एक दूसरे के अध्ययन के बिना अधूरा है। विश्व की भाषाओं का जो ऐतिहासिक-पारिवारिक वर्गीकरण किया जाता है, उसमें संस्कृत का संबंध भारोपीय परिवार की भाषाओं से है। इस दृष्टि से भारोपीय भाषाओं की अवधारणा को समझना हमारे लिए आवश्यक है जिससे हम भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास जान सकें और उनमें हिंदी की स्थिति की बात समझ सकें।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारोपीय परिवार की संकल्पना और उसके उद्भव की व्याख्या कर सकेंगे;
- भारोपीय भाषाओं की विशेषता को बता सकेंगे;
- भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण का सकेंगे;
- भारतीय आर्य भाषाओं का स्वरूप और उनके परस्पर संबंधों का परिचय दे सकेंगे; और
- भारतीय आर्य भाषाओं में हिंदी का स्थान निर्धारित कर सकेंगे।

26.1 प्रस्तावना

विश्व की भाषाओं के वर्गीकरण के अंतर्गत आर्य परिवार की भाषाओं को भारोपीय भाषा परिवार कहा जाता है जिसके अंतर्गत भारतीय आर्य भाषा परिवार भी आता है। भारतीय भाषा का नाम पहले इंडो-जर्मनिक रखा गया था क्योंकि हिंदुस्तान और जर्मनी की भाषाओं में आनुवंशिक साम्य देखा गया था

लेकिन बाद में पता चला कि जर्मनी की सीमा से बाहर भी अनेक भाषाएँ इसी परिवार की हैं, जैसे आयरलैंड और बेल्स में कैल्टी भाषाएँ जो जर्मनी परिवार से भिन्न हैं। इसीलिए बाद में इसका नाम इंडो- कैल्टिक रखा गया। परंतु यह भी उपयुक्त नहीं लगा। बाद में भारत और यूरोप के नाम को लेकर अंग्रेज़ी में इंडो-यूरोपियन नाम रखा गया जिसको हिंदी में भारत-यूरोपीय अथवा संक्षेप में इन दोनों शब्दों को मिलाकर भारोपीय परिवार कहा जाता है। आर्य जाति के लोगों द्वारा बोली जाने वाली भाषाएँ इस परिवार के अंतर्गत आती है इसलिए इससे कभी-कभी आर्य परिवार ही कहा जाता है। इस भाषाओं के अभिलेखबद्ध पूर्व रूप संस्कृत, अवैस्ता, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं में दिखाई देते हैं। इसके आधार पर अनुमान किया गया कि इन सब भाषाओं का भी कोई मूल रूप रहा होगा। उसे ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के विद्वानों ने तुलनात्मक पद्धति के आधार पर पुनर्रचित किया और उसे मूल भारोपीय भाषा कहा।

भारोपीय भाषा परिवार के अंतर्गत भारत-ईरानी भाषा वर्ग की अलग विशिष्टता है। इस वर्ग में एक ओर ईरान की आर्य भाषाएँ और दूसरी ओर भारत की आर्य भाषाएँ सम्मिलित की गई हैं। ईरान की भाषाओं में पश्चिम उपशाखा, फारसी और पूरब की उपशाखा अवेस्ता कहलाती है। इसके अलावा पश्तो, बलोची, पामीरी, कुर्दी जैसी भाषाएँ भी इसके अंतर्गत आती है। इसी की एक उपशाखा दरदी कहलाती है। भारत की कश्मीरी भाषा इसी भाषा के अंतर्गत है।

भारत में आर्यों के आगमन के पश्चात् भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास प्रारंभ होता है। वर्तमान युग तक इसके विकासक्रम को तीन युगों में रखा जाता है। प्रागैतिहासिक काल से लेकर 500 ई.पू. तक प्राचीन भारतीय आर्य भाषा, 500 ई.पू. से 1000 ई. तक मध्य भारतीय आर्य भाषा तथा 1000 ई. से वर्तमान काल तक आधुनिक भारतीय आर्य भाषा। आर्य भाषा ऋग्वेद की भाषा में प्रतिबिम्बित दिखाई देती है। इसी भाषा का विकसित रूप बाद में संस्कृत कहलाया। संस्कृत शब्द से संकेत मिलता है कि व्यवहार में प्रचलित बोलियों में व्याकरणिक संस्कार करके मानक भाषा को एक परिनिष्ठित रूप दिया गया। पाणिनि ने संस्कृत के वैदिक और लैकिक नाम से दो रूपों का उल्लेख किया है। बाद में पाणिनि द्वारा परिनिष्ठित संस्कृत में ही बाल्मीकि, व्यास, कालिदाल आदि ने विपुल साहित्य का सर्जन किया है।

एक समय में संस्कृत भाषा अपने रूप में स्थिरीकृत हो गई। उस समय के बाद संस्कृत भाषा का बोलचाल का रूप समाप्त हो गया और वह जिस रूप में थी, उसी रूप में स्थिर होकर साहित्यिक भाषा मात्र रह गई। इसी संदर्भ में इस भाषा का श्रेण्य (Classical) भाषा की संज्ञा दी जाती है।

संस्कृत भाषा में बोलचाल के स्तर उत्पन्न परिवर्तनों के कारण इन भाषा का नामकरण बदलता गया। संस्कृत से पालि, पालि से प्राकृत भाषाएँ और प्राकृत भाषाओं से अपभंश भाषाओं का विकास क्रम बना। अपभ्रंश भाषाओं से हिंदी, पंजाबी, गुजराती, बांग्ला आदि आधुनिक भाषाओं का विकास हुआ जो ई. 1000 के बाद से परिलक्षित होता है।

एक मूल संस्कृत भाषा से लगभग 20 प्रमुख आधुनिक आर्य भाषाओं के निकलने के पीछे कई कारण हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि किस तरह से ये भाषाएँ अपनी अलग अस्मिता ग्रहण करती हैं। इन्हीं व्यक्तिगत विशेषताओं के संदर्भ में विद्वानों ने इन भाषाओं को अपने-अपने ढंग से वर्गीकृत करने का यत्न किया है।

26.2 भारोपीय परिवार की भाषा

आपने पिछली इकाई में पढ़ा कि संसार के लगभग 9 प्रमुख भाषा परिवार हैं। भारोपीय परिवार इनमें सबसे बड़ा सबसे महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके बोलने वाले अमेरिका से न्यूज़िलैंड तक विस्तृत भूभाग में बसे हैं। भारोपीय परिवार की भाषाएँ बोलने वालों की संख्या विश्व में सबसे अधिक है।

प्रारंभ से आज तक इस परिवार का नाम विवादास्पद रहा है। इसके नाम प्रमुख हैं :

1. **इंडोजर्मेनिक :** पहले इस भाषा परिवार के पूर्वी छोर पर भारत व पश्चिमी छोर पर जमर्नी के होने के कारण जर्मन विद्वानों ने इंडोजर्मेनिक नाम दिया था। बाद में कुछ विद्वानों ने इसे इंडोकेल्टिक नाम दिया परंतु इस नाम से इस परिवार की सही रूपरेखा स्पष्ट नहीं होती है।

2. **आर्य परिवार:** इस परिवार को बाद में आर्य परिवार भी कहा गया, परंतु फ्रांस आदि देशों ने इस नाम के विरुद्ध दो तर्क उपस्थित किये-

(क) इस परिवार की भाषाओं के बोलने वाले केवल आर्य जाति के होंगे, ऐसा भ्रम होता है।

(ख) आर्य शब्द का व्यवहार सामान्यत: इस परिवार की हिंदी-ईरानी शाखा के लिए अधिक उचित है, क्योंकि इन दोनों देशों के लोग अपने को आर्य कहते हैं।

इसी प्रकार जफेटिक, सैमेटिक, हैमेटिक के वजन पर इसको जेमेटिक नाम भी दिया गया पर अवैज्ञानिक होने के कारण यह नाम अमान्य रहा। साथ ही अनेक जेमेटिक कहलाने वाले लोगों की भाषा भारोपीय परिवार से दूर है। बाइबिल में इसी आधार पर मनुष्यों का वर्गीकरण किया गया है।

इस प्रकार कुछ विद्वानों ने इस परिवार को सांस्कृतिक काकेशियन नाम भी दिया परंतु यह नाम प्रभावित नहीं हुआ। भारोपीय या इंडोयूरोपीयन नाम आजकल प्रचलित है। यह नाम क्षेत्र के आधार पर है। परंतु अब अमरीका, अफ्रीका के बहुत से भागों में भी इस परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं। जैसे - अंग्रेजी, डच, स्पेनिश, फ्रेंस। परंतु इस परिवार के अन्य नामों की तुलना में यह अधिक सार्थक है। इसीलिए यही प्रचलित हैं।

26.2.1 भारोपीय परिवार की भाषाओं का वर्गीकरण

भारोपीय भाषा परिवार की भाषाओं का व्याकरण और ध्वनि के आधार पर सेंतम् और केंतुम दो वर्गों में बाँटा गया है। यह वर्गीकरण बान ब्रैडके द्वारा किया गया है। इस परिवार की पश्चिमी शाखा और पूर्वी शाखा थी परंतु 20वीं शती में तोखारी भाषा निकल पड़ी जो पूर्व में होने पर भी केंतुम वर्ग की है। इसलिए यह विभाजन स्थिर नहीं रह सका। इस वर्गीकरण का आधार है 100 ((सौ) के लिए प्रयुक्त शब्द। प्राय: पूर्व की भाषाओं में इन शब्द का /शतम्/ उच्चारण मिलता है, जबकि पश्चिम् में /केंटुम्/ का उच्चारण इसी तरह अन्य शब्दों में भी /च/ और /क/ या /ह/ विभेदीकरण है, जिससे इन शब्दों से वर्गीकरण का नामकरण हुआ है। उदाहरण केंद्र - सेंटर, सप्त-हप्त आदि। आइए दोनों वर्गों की भाषाओं का विवरण देखें।

(क) केंटुम वर्ग

1. **केल्टिक:** आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व इस भाषा की शाखाएँ यूरोप के विस्तृत क्षेत्रों में बोली जाती थीं, किन्तु अब आयरलैंड, स्काटलैंड, मानद्वीप तथा कार्नवाल के कुछ भागों में इसका क्षेत्र शेष रह गया है। केल्टिक में आदिम भाषा का कब कहीं /ब्/ तथा कहीं /क्/ के रूप में विद्यमान है। इस शाखा का इटैलिक से घनिष्ठ संबंध है।

   इस शाखा के तीन वर्ग माने जाते हैं :

   क) गाली

   ख) गोइडेली-आइरिश, स्काच, मेंक्स

   ग) ब्रादानी

2. **ट्यूटेनिक या जर्मेनिक :** जर्मन शब्द का अर्थ है पड़ोसी। यह भारोपीय परिवार में सबसे महत्वपूर्ण शाखा है। अंग्रेजी, जर्मन, डच आदि इसी की भाषाएँ हैं। इसका प्राचीन रूप गाथिक आदि भाषाओं में मिलता है। प्राचीन सामग्री के आधार पर इस शाखा के अंतर्गत भाषाओं के तीन समूह हैं।

   क) **उत्तरी ट्यूनिक :** इसकी दो शाखाएँ हुई -

   1) पश्चिमी स्कोंडिनेवी

   2) पूर्वी स्कोंडिन्वी

ख) **पूर्वी समूह :** इसकी मुख्य भाषा गाथिक है। भारोपीय की पुरानी बातें इसमें सुरक्षित हैं। यह भाषा संस्कृत के निकट मानी जाती है।

ग) **पश्चिमी समूहः** इसकी तीन शाखाएँ हैं।

1) **इंग्लिश :** इंग्लिश का नाम आंगल जाति के नाम पर पड़ा। आज यह 25 करोड़ व्यक्तियों की भाषा हैं साथ ही अंतर्राष्ट्रीय भाषा भी है।

2) **जर्मन :** इसकी दो शाखाएँ हैं।

क) उच्च जर्मन

ख) निम्न जर्मन

3) **डच :** यह मुख्य रूप में हॉलैंड की भाषा है।

इस भाषा की सभी भाषाएँ श्लिष्ट योगात्मक से अयोगात्मक होती जा रही हैं।

3. **इटैलिक/लैटिन :** इसको लैटिन (लातिनी) भी कहते हैं। यह भाषा इस परिवार की प्राचीन भाषाओं में से है और अब भी वर्तमान है। इसी से रोमांस भाषाएँ निकली हैं। लैटिन रोम की भाषा थी। रोम साम्राज्य के छिन्न-छिन्न होने पर इसका साहित्यिक महत्व तो काफी समय तक रहा, परंतु कालांतर में बोल-चाल की भाषाओं ने इसको पराजित कर दिया। फ्रेंच, इतालवी,स्पैनिश, पुर्तगाली और रोमेनियन प्रमुख लातिनी (Romance) भाषाएँ हैं।

4. **हेलेनिक/ग्रीक :** इसको ग्रीक शाखा भी कहते हैं। केंतुम समुह में यह शाखा सबसे प्राचीन है। महाकवि होमर के इलियड और ओडिसी महाकाव्य इसी के प्राचीन उदाहरण हैं। सुकरात तथा अरस्तू ने भी अपने विचार इसी भाषा में व्यक्त किये थे। इस भाषा का आधुनिक रूप यूनान देश की बोलियों में प्राप्त है।

   ग्रीक और संस्कृति में बहुत समानताएँ हैं। ग्रीक में मूल स्वर सुरक्षित हैं तो संस्कृत में मूल व्यंजन। समास और वाच्य भी दोनों में समान हैं। लकारों की समृद्धि संस्कृत में अधिक है।

5. **हित्ती :** 16वीं शती के उत्तरार्द्ध मे बोगजकुई की खुदाई में इसका रूप कीलाक्षरों में मिला था। ऐसा विवाद है कि भारोपीय परिवार से कुछ शब्द उधार लेकर इस भाषा ने अपनाए। विभक्तियाँ और सर्वनाम संस्कृत और लैटिन से बहुत अंशों से मिलते हैं। परंतु अनेक विद्वान इस भाषा को मूल भारोपीय भाषा से भी प्राचीन मानते है।

6. **तोखारी :** अंग्रेजी फैंच, रूसी तथा जर्मन विद्वानों ने पूर्वीय तुर्किस्तान के तुरकान प्रदेश में 20वीं शदी के आरंभ में कुछ ग्रंथ पाए जो भारतीय लिपि (ब्राह्मी तथा खरोष्ठी) में थे। फलस्वरूप यह भाषा भारोपीय परिवार की सिद्ध हुई। बोलने वाले तोखार लोग थे। इसलिए यह तोखारी कहलाई।

इस भाषा में स्वरों की जटिलता कम है। संधि नियम संस्कृत जैसे हैं। विभक्तियाँ भी आठ हैं। शब्द भंडार संस्कृत के समीप है।

पितृ-पाच्र्, मातृ-माच्र्

इस भाषा की प्राप्त सामग्री के अध्ययन से पता चलता है कि इनमें दो बोलियों का प्रयोग हुआ है।

1. **इलीरियन :** इसका क्षेत्र इटली के आस-पास है। इसकी एक शाखा अल्बेलियन है। उसी के विपय में कुछ सामग्री प्राप्त है। इसलिए इस शाखा को अल्बेलियन भी कहा जाता है। इसके बोलने वाले अल्बेरिया और ग्रीस में रहते हैं। अल्बेलियन साहित्य लगभग 17 वीं सदी से प्रारंभ होता है। इसके पूर्वका रूप इस भाषा का नहीं मिलता। अत: इसका ऐतिहासिक अध्ययन नहीं किया जा सकता। इस भाषा ने तुर्की, लैटिन, ग्रीक आदि के भी शब्द लिए हैं। इसलिए यह भी जानना कठिन है कि इसके अपने शब्द कितने हैं।

   बहुत दिनों तक विद्वान इसे स्वतंत्र शाखा मानने को तैयार नहीं थे। परंतु किसी से पूर्णत: मेल न खाने पर इसे अलग माना ही गया है।

2. **बाल्टिक :** इस वर्ग की तीन भाषाएँ हैं :

   क) **प्राचीन काल :** इसका स्थान प्राचीन प्रशा प्रदेश है। 15वीं सदी के बाद की तथा 16वीं सदी की लिखी हुई पुस्तकें इसमें मिलती हैं। यह भाषा 17वीं सदी में समाप्त हो गई।

   ख) **लिथुआनिया:** इसका क्षेत्र प्रशा के उत्तर पूर्व में है। इसका साहित्य 16वीं सदी के बाद से आरंभ होता है। इसकी प्रसिद्ध पुस्तक महाकवि दोगेलेटिस की सीजन्स है। इसका रचना काल 1750 है। वैज्ञानिकों की दृष्टि से यह भाषा बड़ी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसका विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ है। इसी कारण आज भी यह मूल भारोपीय भाषा से अधिक दूर नहीं। इसमें अब भी एस्टि (अस्ति) एवं जीवा जैसे रूप मिलते हैं। वैदिक संस्कृत की भाँति इसमें अभी भी संगीतात्मकता और द्विवचन हैं।

   ग) **लैट्टिश :** यह रूस के पश्चिमी भाग में लेटविया राज्य की भाषा है। यह लिथुआनियन से अधिक विकसित है। इसमें भी साहित्य का अध्ययन 16वीं सदी में हुआ है। इस भाषा के अधिक विकसित होने के कारण बाल्टिक शाखा को लेट्टिश शाखा भी कहते हैं।

3. **स्लेवोनिक :** यह एक विस्तृत भाषा वर्ग है - पूर्वी यूरोप का एक बड़ा भाग इसमें आता है। दूसरी तीसरी सदी तक इस भाषा को बोलने वाले एक सीमित क्षेत्र में रहते थे। 5 वीं सदी के बाद से ये लोग इधर- उधर फैलने लगे। 9वीं सदी तक रूस, पौलैंड, बलगारिया इसके प्रभाव में आ गये। इसके तीन भाग किये जा सकते हैं।

   क) **पूर्वी शाखा :** इसकी भी तीन भाषाएँ हैं (1) महारूसी, (2) श्वेत रूसी और (3) लघु रूसी। रूसी रूस की प्रधान भाषा है। 18वीं सदी के पूर्व तक यह बहुत अस्त-व्यस्त थी। उसके बाद इसे टकसाली रूप मिला। श्वेत रूसी रूस के दक्षिण में बोली जाती है। लघु रूसी का दूसरा नाम रूथेनियन भी है। इसके कुछ बोलने वाले आस्ट्रिया में भी मिलते हैं।

   ख) **पश्चिमी शाखा :** इसकी प्रधान भाषा चेक है। यह प्रधानत: बोहेमिया की भाषा है। अत: इसका नाम बोहेमियन भी है। इसका नियमित साहित्य 12वीं सदी से मिलता है। इस शाखा में पोलिश भाषा भी आती है। इसका मूल क्षेत्र अब केवल पोलैंड हैं।

   ग) **दक्षिणी शाखा:** इसकी प्रसिद्ध भाषा बल्गेरियन है। इसके प्राचीन रूप को चचर् स्लैवोनिक कहा जाता है। इसमें बाइबिल का अनुवाद 6वीं सदी के मध्य में हुआ था। वर्तमान बल्गेरियन पूर्णत: वियोगात्मक हो गई है। इसके शब्द ग्रीक, अल्बेनियन, रूमेनियन तथा तुर्की के शब्दों की तरह है। इसका प्रधान क्षेत्र बलगेरिया के अतिरिक्त यूरोपीय तुर्की तथा ग्रीस आदि भी हैं।

4. **आरमेनियन :** कुछ लोग इस शाखा को आर्य शाखा के अंतर्गत रखना चाहते हैं, क्योंकि इसके अनेक शब्द ईरानी से मिलते हैं। परंतु ये शब्द केवल उधार लिये गये हैं। 5वीं सदी में आर्मिनिया पर ईरान के युवराज का राज्य था। इसी कारण इसमें ईरानी शब्दों का बाहुल्य है। इस भाषा की योगात्मकता और ध्वनि आदि ईरानी से नितांत भिन्न है। इसके नवीन रूप का प्रयोग धार्मिक कार्यों में अब भी होता है। इस भाषा को आर्य और ग्रीक के बीच की कड़ी कहा जाता है।

   वर्तमान आर्मेनियन के प्रधान दो रूप हैं। एक का प्रयोग एशिया में होता है और दूसरे का यूरोप में। एशिया में बोली जाने वाली का नामा अरास्ट है और यूरोप में बोली जाने वाली को स्तुंबल कहते हैं। स्तंबुल में साहित्य रचना भी होती है। यही इसकी प्रधान बोली है।

26.2.2 भारत-ईरानी उपवर्ग

शतम् वर्ग की एक महत्वपूर्ण शाखा भारत-ईरानी भाषाओं का है। इसके बोलने वालों की संख्या विश्व की आबादी का लगभग 20 प्रतिशत है। ईरान की फ़ारसी, अफ़गानिस्तान की पश्तो, पाकिस्तान की भाषाएँ, उत्तर भारत की आर्य भाषाएँ, नेपाल की नेपाली, बांग्लादेश की बांग्ला, श्रीलंका की सिंहली भाषाएँ इसी शाखा में आती है।

भारोपीय परिवार की यह महत्वपूर्ण और अत्यंत प्राचीन शाखा है। ऋग्वेद के समान पुराना और समृद्ध साहित्य इस परिवार की किसी अन्य भाषा में नहीं मिलता। इसकी कुछ ऋचाएँ ढाई हज़ार वर्ष ई.पू. की लिखी मानी जाती हैं। पारसियों का धर्म ग्रंथ जेंद अवेस्ता भी लगभग 7वीं सदी ई.पू. का है। इस शाखा की भाषाओं ने भाषा-विज्ञान के अध्ययन के लिए पर्याप्त सामग्री प्रदान की है। विद्वानों की मान्यता है कि जब आर्य जाति अन्य भारोपीयों का साथ छोड़ने के बाद आगे बढ़ी तो कुछ लोग ईरान में रुक गये और कुछ आगे बढ़कर भारत में आ बसे। इस प्रकार इसकी भारतीय और ईरानी दो प्रमुख शाखाएँ हो गईं। इन दोनों को भारोपीय परिवार की अलग-अलग शाखा मानना वैज्ञानिक नहीं है, क्योंकि ये दोनों बहुत सी बातों में साम्य रखती हैं, जिससे स्पष्ट है कि ये दोनों एक शाखा के रूप में थीं। वास्तव में इस शाखा के तीन भाषा समूह हैं :

1. ईरानी
2. दरद
3. भारतीय

1. **ईरानी :** ईरानी भाषा का प्राचीनतम साहित्य पारसी धर्म-ग्रंथ जेंद अवेस्ता है। इसकी भाषा ऋग्वेद से बहुत कुछ मिलती है। इसके अतिरिक्त छठी सदी ई.पू. के कुछ शिलालेख भी ईरानी में मिलते हैं। पश्तू, परतू, बलूची, आधुनिक फारसी आदि इसी शाखा की भाषाएँ हैं। मूल रूप में ईरानी शाखा के दो भेद हैं। ईरानी के ऐतिहासिक क्रम तीन रूप हैं:

   प्राचीन ईरानी

   मध्यकालीन ईरानी

   आधुनिक ईरानी

   हम यहाँ प्राचीन ईरानी की बात करेंगे। इसके भी दो रूप हैं :

   अवेस्ता

   प्राचीन फ़ारसी

   अवेस्ता : ज़रथुश्त्र के उपासक पारसी अवेस्ता को उसी तरह महत्व देते हैं, जैसे भारतीय आर्य वेदों को देते हैं। अवेस्ता का अर्थ है 'शास्त्र' या 'ज्ञान ग्रंथ'। अवेस्ता में गाथाएँ लिखी गई थीं जो वेदों के समान मानी जाती है। अवेस्ताा में ईश्वर को अहुरमज़्दा (असुरमेधाः) कहा गया है। अवेस्ता में सोम, मित्र, वरुण अर्यता आदि देवताओं का उल्लेख है।

   अवेस्ता की भाषा संस्कृत के काफ़ी निकट है। इसमें भी आठ कारक, तीन वचन, तीन लंग हैं। क्रिया रचना में भी साम्य है।

   ध्वनि परिवर्तनों को ध्यान में रखकर देखें तो संस्कृत और अवेस्ता में साम्य देख सकते हैं। जैसे :

अवेस्ता	**संस्कृत**
आ-दिम् पेरेसत् ज़रथुश्त्रो	आ तं (अ)पृच्छत् जरठोष्ट्र :
"को नरै अही?"	"को नरो असि"

[उससे ज़रथुश्त्र ने पूछा - आप कौन पुरुष हैं?]

प्राचीन फ़ारसी भी संस्कृत भाषा से बहुत मिलती थी। यह भाषा साम्य आधुनिक फ़ारसी तक में परिलक्षिता होता है। फ़ारसी के सैकड़ों शब्दों के समान रूप भारतीय भाषाओं में देखे जा सकते हैं। ऐसे शब्द हैं :

कुर्दन (करना), खरीदन (क्रीत), बर्फ़ (वप्र), दस्त (हस्त-हाथ), खुदा (स्वधा), दुख्तर (दुहितृ-पुत्री), अस्व (अश्व), साया (छाया), कुछ उपसर्ग जैसे बे (वि-) जैसे बेचारा, बेकार, पा (पाद-'पैर') जैसे पाजामा।

मध्यकालीन फ़ारसी भाषा का नाम पहलवी है। यह अपभ्रंश से बहुत मिलती है। इसका आरंभिक ग्रंथ महाकवि फिरदौसी का शाहनामा है।

आधुनिक ईरानी में फ़ारसी आधुनिक भाषा और बलूचिस्तान की बलूची भाषाएँ शामिल हैं। आधुनिक फ़ारसी ने अरबी लिपि अपनाई है और अरबी भाषा से सैकड़ों शब्द ग्रहण किये हैं। फ़ारसी की अपनी काव्य परंपरा हैं, जो उर्दू भाषा में भी अपनाई गई है।

2. **दरद :** यह संस्कृत का शब्द है, इसका अर्थ पर्वत है। इस परिवार की प्रमुख भाषा कश्मीरी है। इसका प्रभाव मराठी, सिंधी, पंजाबी पर भी है। पश्तो की भाँति दरद भी भारतीय और ईरानी के बीच की भाषा है। पश्तो ईरानी की ओर झुकी है, तो दरद भारतीय की ओर। प्राचीन काल में दरद भाषाओं को भारतीय परिवार का समझा गया था और उन्हें पैशाची प्राकृत की संज्ञा दी गई थी। परंतु अब इसे भारतीय आर्य भाषाओं से भिन्न एक स्वंतत्र उपभाषा माना जाता है।

3. **आर्य :** इस उपवर्ग में कश्मीरी के अतिरिक्त भारत में बोली जाने वाली अन्य आर्य भाषाएँ यथा संस्कृत, हिंदी बांग्ला, गुजराती आदि आती हैं। इस उपवर्ग को इस कारण भारतीय आर्य भाषाएँ (Indo-Aryan languages) भी कहा जाता है।

26.3 भारतीय आर्य भाषाएँ

भारतीय आर्य भाषाएँ भारतीय उपमहाद्वीप के 5 देशों में बोली जाती हैं, जिनमें पाकिस्तान की उर्दू, नेपाल की नेपाली, बांग्लादेश की बांग्ला और श्रीलंका की सिंहली शामिल है।

इन सब भाषाओं का विकास संस्कृत भाषा से हुआ है, संस्कृत से हिंदी तक के विकास क्रम को हम विस्तार से आगे की इकाइयों में पढ़ेंगे। इस इकाई में आर्य भाषाओं के इतिहास और वर्तमान स्थिति का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

26.3.1 संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय

भारोपीय भाषा परिवार की आर्य उपशाखा की भारतीय आर्य भाषा का परिवार सर्वाधिक महत्वपूर्ण शाखा है। हिंदी का संबंध इसी शाखा से है। भारतीय आर्य भाषाओं का इतिहास लगभग साढ़े तीन हजार वर्षों का इतिहास है। दीर्घकाल को विकास की दृष्टि से तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है।

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल (1500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक)
2. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा काल (500 ई.पू. से 1000 ई.पू. तक)
3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषा काल (1000 ई.पू. से वर्तमान समय तक)

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा का समय 1500 ई.पू. से 500 ई.पू. तक माना जाता है। विकास की दृष्टि से इस काल की भाषा के दो रूप मिलते हैं।

1. **वैदिक संस्कृत**
2. **लौकिक संस्कृत**

वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत

ऋग्वेद की भापा की तुलना यदि लौकिक संस्कृत से की जाए तो स्पप्ट अंतर प्रातिपादिकों की विभक्तियों में तथा धातु रूपों में मिलता है।

मध्यकालीन भारतीय आर्य भापाएँ लगभग पन्द्रह सौ वर्पों तक इस देश में प्रचलित रही।
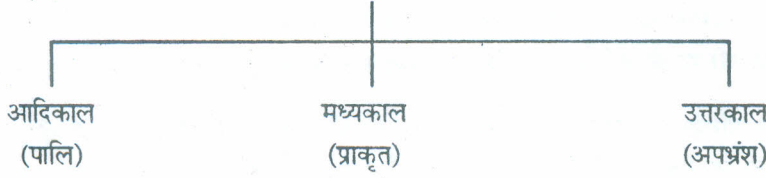
मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का आदिकाल

इस काल के अंतर्गत पालि एवं अशोक के शिलालेखों की भापाएँ आती हैं। पाली में संस्कृत के ऋ, ॠ, लृ, ऐ और औ स्वर लुप्त हो गए। ह्रस्व ए (ऍ) और ह्रस्व ओ (ऑ) अविर्भाव हो गया। ये ह्रस्व ऍ और ऑ वैदिक संस्कृत की किसी विभापा में प्राप्त ए हो।

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का मध्यकाल

इसके अंतर्गत विभिन्न साहित्यिक प्राकृतें आती हैं। प्राकृतें विभिन्न जनपदों की लोक भापाएँ थीं। प्राकृत भापा के सर्वप्रथम व्याकरण, 'प्राकृत-प्रकाश' में बररुचि ने चार प्राकृत भापाओं का शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया है।

1. महाराष्ट्री 2. पैशाची 3. मागधी 4. शौरसेनी

प्राकृतों के प्रसंग में बहुत से नामों का उल्लेख मिलता है, किंतु पाँच प्रमुख हैं :

1. महाराष्ट्री (महाराष्ट्र)
2. पैशाची (सिंध)
3. मागधी (मगध)
4. शौरसेनी (मथुरा के आस-पास)
5. अर्ध मागधी (कोसल)

जो ध्वनियाँ पाली में थीं, वे ही प्राकृत में भी प्राप्त होती है। सिर्फ शौरसेनी में 'न' के स्थान पर 'ण' और 'य' के स्थान पर 'ज' प्राप्त होता है। मागधी प्राकृत में तालव्य 'श' है, 'स' नहीं।

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का उत्तर काल

साहित्यिक प्राकृतों के अनन्तर उनके समकक्ष ही प्रचलित लोक व्यावहारिक भापाओं का साहित्यिक स्वरूप विविध अपभ्रंशों के नाम से विकसित हुआ। नेमि सिंधु ने अपभ्रंश के तीन भेद किए हैं:

1. उपनागर
2. आभीर
3. ग्राम्य

परवर्ती व्याकरणों ने इन्हीं तीन भेदों को (1) नागर (2) उपनागर (3) ब्राचड़ की संज्ञा दी है। अपभ्रंश के तीन भेद पश्चिमी, पूर्वी और दक्षिणी नाम से भी किए गए हैं। हेमचन्द्र ने अपने व्याकरण ग्रंथ 'सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन' में अपभ्रंश भापा के जिस रूप का उल्लेख किया है, वह अन्य व्याकरणों द्वारा उल्लेखित नागर अपभ्रंश का ही रूप कहा जा सकता है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का आरंभ 10वीं शताब्दी से माना जाता है। अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से आधुनिक भारतीय भाषाएँ निकली हैं और उनका विकास अपभ्रंश के रूपों से हुआ है। हम इसके बारे में विस्तार से अगली इकाई में अध्ययन करेंगे।

26.4 सारांश

विश्व के विभिन्न भाषा परिवारों में भारोपीय भाषा परिवार अनेक दृष्टियों से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यद्यपि इस भाषा परिवार के कई नाम प्रचलित हुए परंतु अब सर्वत्र भारोपीय भाषा परिवार स्वीकृत है।

इस भाषा परिवार के अंतर्गत भारत-ईरानी भाषा वर्ग की अपनी अलग विशेषताएँ हैं और इसी की उपयोगिता भारतीय आर्यभाषा परिवार कहलाती है जिसके अंतर्गत भारत में बोली जाने वाली समस्त आर्य भाषाएँ परिगणित की जाती है।

भारोपीय परिवार को ध्वनि व्यवस्था के आधार पर केंतुम और शतम् दो वर्गों में रखा गया है। सामान्यतः केंतुम इस परिवार की पश्चिमी शाखा का प्रतिनिधित्व करती है तो शतम् पूर्वी भाषाओं को संकेतित करती है।

भारतीय आर्य भाषा को ऐतिहासिक दृष्टि से तीन काल खंडों में विभाजित किया जाता है।

1. प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ
2. मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ
3. आधुनिक भारतीय आर्य भाषाएँ

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को मध्यकालीन आर्य भाषा के तृतीय सोपान अपभ्रंश से विकसित माना जाता है। दसवीं शताब्दी के आस-पास अपभ्रंश भाषा से आधुनिक अन्य भाषाएँ क्रमशः विकसित हुईं। इन भाषाओं का वर्गीकरण डॉ. ग्रियर्सन, सुनीती कुमार चटर्जी आदि विद्वानों ने किया है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में हिंदी भाषा और साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन काल में संस्कृत आदि अखिलभारतीय भाषाओं की जो भूमिका थी आज लगभग वही भूमिका हिंदी निभा रही है। जैसे - संस्कृत मूलतः मध्य प्रदेश की भाषा थी और उसके साहित्य के विकास में भारत के सभी प्रांतों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है वैसे ही आधुनिक हिंदी भी मध्य देश की भाषा के कारण अंतर प्रांतीय व्यवहार की भाषा बन गई है और उसके साहित्य के विकास में देश के सभी राज्यों का उल्लेखनीय योगदान है।

अनेक हिंदीतर विद्वानों, कवियों और लेखकों ने न केवल मौलिक साहित्य सृजन कर हिंदी साहित्य की श्रीवृद्धि की अपितु सभी भारतीय भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य का हिंदी में अनुवाद भी किया है। इस प्रकार न केवल हिंदी भाषा अखिल भारतीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठित है, अपितु उसका साहित्य संपूर्ण साहित्य का प्रतिनिधित्व करता है।

26.5 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के लगभग 250 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1. भारोपीय परिवार के 'केंटुम', 'शतम्' वर्गों का परिचय दीजिए।
2. भारतीय आर्य भाषाओं के विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

निम्नलिखित प्रश्न का लगभग 500 शब्दों में उत्तर दीजिए।

3. भारतीय आर्य भाषाओं का विवरण दीजिए।

इकाई 27 संस्कृत से अपभ्रंश तक

इकाई की रूपरेखा

27.0 उद्देश्य

इस खंड की 27 वीं इकाई 'संस्कृत से अपभ्रंश तक' में प्राचीन भारतीय भाषाओं के उद्‌भव एवं विकास तथा उनकी व्याकरणिक संरचना का परिचय दिया गया है। इस इकाई में आप संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश के चरणबद्ध विकास का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- संस्कृत के साहित्यिक एवं भाषिक पक्ष का अध्ययन कर सकेंगे;
- संस्कृत के व्याकरणिक पक्ष का अध्ययन करके अन्य परवर्ती भाषाओं के साथ उसके तादात्म्य को समझ सकेंगे;
- पालि भाषा का इतिहास, उसकी व्याकरणिक संरचना, तथा पालि साहित्य के विभिन्न पक्षों की जानकारी पा सकेंगे;
- पालि और प्राकृत के नामकरण की व्याख्या कर सकेंगे तथा पालि प्राकृत के अंतर को समझा सकेंगे;
- प्राकृत भाषा और साहित्य का अध्ययन करने के बाद आपको यह समझने में आसानी होगी कि किस तरह एक भाषा और साहित्य अपने पूर्ववर्ती एवं परवर्ती भाषा और साहित्य को प्रभावित करते हैं;
- अपभ्रंश की भाषागत विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे;

- हिंदी साहित्य एवं भाषा तथा अपभ्रंश साहित्य एवं भाषा के संबंधों को बता सकेंगे;
- भाषा के क्रमिक विकास एवं उनमें होनेवाले परिवर्तनों को समझा सकेंगे;
- इकाई में दिए गए चारों साहित्यों का अध्ययन तथा उनकी परंपरा का निर्धारण कर सकेंगे।

27.1 प्रस्तावना

'संस्कृत से अपभ्रंश तक' नामक इस इकाई में प्राच्य भारतीय भाषाओं तथा साहित्य की विविध विधाओं का सामंजस्य किया गया है। भारतीय साहित्य में अधिकाधिक अध्ययन सामग्री हमें संस्कृत पालि, प्राकृत एवं अपभ्रंश के साहित्य से मिलती है, जिसमें गद्य, पद्य, साहित्य, व्याकरण आदि का समावेश पूर्ण रूप से है। यदि हम संस्कृत भाषा और साहित्य का अध्ययन करें तो हमें इसमें प्रचुर साहित्य का भंडार मिलता हैं। संस्कृत के विद्वानों माघ, कालिदास, दण्डी, भामह, पाणिनी तथा पतंजली आदि का अक्षय भंडार हमें भारतीय कला, साहित्य दर्शन एवं व्याकरण में मिलता है।

किसी भी पूर्ववर्ती भाषा का विकास उसकी परवर्ती भाषाओं पर अमिट छाप छोड़ता है। यदि हम संस्कृत की परवर्ती भाषाओं, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश से होते हुए हिंदी भाषा पर विचार करें तो उपर्युक्त सभी भाषाओं पर संस्कृत का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। जब संस्कृत भाषा और साहित्य अपने चरमोत्कर्ष पर थी, तब वह सामान्य जन की भी भाषा बनी। बौद्ध धर्म के उदय के साथ पालि भाषा का विकास हुआ और उसमें बहुत से महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना हुई, जिसमें बुद्ध के उपदेश के संकलन को त्रिपिटक नाम दिया गया। इसकी भाषा पालि थी बौद्ध धर्म के प्रचार प्रसार में बौद्ध भिक्षुओं के भ्रमण से बौद्ध धर्म पूरे विश्व में फैला और इसी के साथ पालि भाषा का भी विस्तार हुआ।

पालि भाषा जब उच्च वर्ग की भाषा बन गई, तब प्राकृत भाषा का जन्म हुआ, जो उस समय जनता की भाषा बन गई। लेकिन आगे चलकर जैन धर्म के प्रवर्तक महावीर स्वामी ने इसे प्रोत्साहित किया और इस भाषा में साहित्य की रचना हुई तथा इसका व्याकरण भी बनाया गया। प्राकृत में कच्चायन व्याकरण काफी समृद्ध और महत्वपूर्ण व्याकरण माना जाता है। प्राकृत के कई क्षेत्रीय रूप विकसित हुए।

प्राकृत जब जन भाषा बनी और उसमें जन साहित्य की रचना होने लगी, तब यह धीरे-धीरे समूचे भूमंडल पर फैली और इसी से अपभ्रंश भाषा का प्रचार हुआ। प्राकृत के विभिन्न रूपों से अपभ्रंग के भी कई क्षेत्रीय रूप विकसित हुए। अपभ्रंश में सर्वप्रथम साहित्य रचना विद्यापति पदावली में मिलती है। इसके साहित्य में मधुरता और गेयता भरपूर मिलती है। जन भाषा होने के कारण इसका प्रचार-प्रसार विस्तृत भू-भाग में हुआ। उसके भाषिक रूप में भी परिवर्तन आया, अपभ्रंश अपनी साहित्यिक और भाषिक विशेषताओं के कारण भारतीय आर्य भाषाओं के संपर्क में आयी और धीरे-धीरे इसका स्वरूप बदलता गया। यह अपने परिवर्तित स्वरूप और जन साहित्य की भाषा होने के कारण आधुनिक आर्य भाषाओं के निकट आयी।

27.2 संस्कृत

संस्कृत भारतीय आर्य भाषा की सबसे प्रमुख और सबसे पुरानी भाषा है। यही सारी भारतीय भाषाओं के साहित्य और व्याकरण का उत्स है। इसके काल का प्रश्न अनुत्तरित है। परंपरागत भाषावैज्ञानिक इसे अनादि मानते हैं। इसके मूल के बारे में भी गहरा विवाद है। कुछ विद्वान इसे बाहर से आयी हुई भाषा कहते हैं, भारतीय विद्वान इसी भूमि से इसका उद्भव मानते हैं।

27.4.1 नामकरण

संस्कृत, ग्रीक, लैटिन भाषाएँ भारोपीय भाषा संसार के वृहद् परिवार की आदि कालीन भाषाएँ हैं। पहले इनकी मूल स्थिति बोलचाल की भाषाओं के रूप में थी। तत्कालीन बोलचाल की भाषाओं की ये उपभाषाएँ या प्रशाखाएँ भी थीं। प्राचीन जीवित भाषाओं के शब्दों को लेकर वैयाकरणों ने उन्हें विशिष्ट नियमों से बाँध दिया। इन विशिष्ट नियम से बँधा स्थिर स्वरूप ही संस्कृत, ग्रीक तथा लैटिन के निर्माण और विकास का कारण हुआ।

संस्कृत का अर्थ है, सम + कृ + क्त अथवा परिष्कृत, निर्दोष और शुद्ध भाषा। इसी कारण आचार्य दण्डी ने अपने काव्यादर्श में इसे देववाणी के नाम से अभिहित किया है। **'संस्कृत नाम दैवी वागन्वाख्याता महिर्षि:'** इसे देव भाषा, दैव वाणी, गीवणि वाणी आदि नामों से भी पुकारा गया है।

प्राचीन काल में संस्कृत भाषा का स्वरूप व्याकरण के नियमों से अधिक बँधा नहीं था। "छन्दसि बहुलम" इस सूत्र से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक भाषा में जना: जनास: आदि व्याकरण के नियम विकल्प से लगते थे। पाणिनि के समय (ई. पूर्व 500 ई. पू.) यह भाषा व्याकरण के नियमों से बँधकर परिभाषित रूप में विकसित हुई और इसका नाम संस्कृत पड़ा। यहां संस्कृत शब्द का तात्पर्य है सुगठित, सँवारी हुई आदि।

द्वितीय सहस्राब्दी ई. पू. में किसी समय भारत यूरोपीय जातियों ने ईरान, एशिया माइनर और उत्तर पश्चिम भारत के विस्तृत भूभागों पर अपना अधिकार जमा लिया था। उनकी गतिविधियों और वंशमूलक संबंधों की समस्याओं का आज तक समाधान नहीं हो पाया है। लेकिन भाषागत प्रमाणों के आधार पर हम एक मानव समुदाय की कल्पना कर सकते हैं, और उसे आर्य नाम दे सकते हैं। उसी मानव समुदाय की भाषा को हम भारत और ईरान की भाषाओं की मूल भाषा कह सकते हैं। इन भारतीय भाषाओं के संबंध में प्राचीनतम साक्ष्य ऋग्वेद है। संस्कृत में वैयाकरणों ने अनियमित प्रयोगों के पृथक्करण और वैकल्पिक रूपों के अप्रयोग के मार्ग को अपना लिया, लेकिन उन्होंने किसी नवीन शब्द रूप को कदाचित ही प्रचलित होने दिया। इस प्रकार उन्होंने एक सुव्यवस्थित और विशुद्ध भाषा को जन्म दिया, जो सच्चे अर्थों में 'संस्कृत' थी।

रामायण में भी उसे संस्कृत कहा गया है। भाषा की विशुद्धता की रक्षा में याज्ञिक धर्म ने भी महत्वपूर्ण भाग लिया। इस बात की पुष्टि महाभाष्य में पतञ्जलि (150 ई.पू.) के इस कथन से भी होती है कि किसी समय कुछ ऐसे ऋषि अपनी बोलचाल की भाषा में यद्, वा, नस् के स्थान पर यर् वा, णस् जैसे अपशब्दों का प्रयोग करते थे। वैयाकरणों के निष्कर्षों को चौथी शताब्दी ई.पू. में पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' में संकलित किया गया है।

27.2.2 संस्कृत साहित्य

संस्कृत संसार की प्राचीनतम परिष्कृत भाषा है। भारतीय मनीषियों का समस्त चिंतन-मनन, शोध और उसका विश्लेषण संस्कृत भाषा में ही है। भारत के साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक जीवन की व्यवस्था भी इसी भाषा में प्राप्त होती है। भारत की समस्त प्रांतीय भाषाओं में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य है। संस्कृत भाषा का साहित्य अत्यंत विस्तृत एवं समृद्ध है। साहित्य शब्द का अर्थ है शब्द और अर्थ का समन्वय। 'सहितयो: शब्दार्थयो: भावं साहित्यम्'। व्यापक अर्थ में साहित्य से अभिप्राय उन ग्रंथों से है जो किसी भाषा विशेष में रचे गए हैं। अंग्रेजी भाषा में 'लिटरेचर' शब्द से भी यही अर्थ ग्रहण किया जाता है। लेकिन यदि हम उसका संकुचित अर्थ लें तो साहित्य शब्द का प्रयोग काव्यादि के लिए भी किया जाता है। काव्य आदि केवल मनोरंजन के साधन नहीं हैं। मानव समाज एवं जीवन के लिए काव्य की बहुत उपादेयता है। भर्तृहरि ने तो साहित्य काव्यादि से विहीन व्यक्ति को मनुष्य न मानकर पशु कहा है। साहित्य समाज को प्रतिफलित करता है। साहित्य ही संस्कृति का वाहक और धारक है। साहित्य समाजिक भावना तथा सामाजिक विचार की विशुद्ध अभिव्यक्ति होने के कारण, यदि समाज का आईना है, तो सांस्कृतिक आचार और विचार का प्रबल प्रचारक होने के लिए संस्कृति के संदेश को जनता के हृदय तक पहुँचाने के कारण साहित्य संस्कृति का बाहक होता है। विश्व की अन्य भाषाओं की तरह संस्कृत साहित्य भी इन सभी विशेपताओं से युक्त है। लेकिन संस्कृत साहित्य की अपनी कुछ विशिष्ट विशेषताएँ हैं, जिनके कारण वह आज भी गौरवान्वित है। प्राचीनता, व्यापकता, विशालता धार्मिकता, सांस्कृतिक तत्व रसोन्मेपकारिणी कला इन सभी दृष्टियों से संस्कृत साहित्य अनुपम रहा है। प्राचीनता की दृष्टि से देखने से यह पता चलता है कि पाश्चात्य एवं पूर्ववर्ती सम्पूर्ण विद्वत् जगत 'ऋग्वेद' को विश्व का सर्वप्राचीन ग्रंथ स्वीकार करता है। सामान्यतया संस्कृत साहित्य में धार्मिक ग्रंथों का बाहुल्य माना जाता है। मनुष्य के प्राप्तव्य चार लक्ष्यों धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का सुन्दर समन्वित विकास संस्कृत साहित्य में उपलब्ध होता हैं।

इससे स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य जीवन के केवल आध्यात्मिक पक्ष को ही चित्रित नहीं करता, बल्कि लौकिक अथवा भौतिक पक्ष को भी समान रूप से चित्रित करता है। संस्कृत साहित्य में 'सत्यं शिवं सुंदरम्' का अद्भुत एवं प्रीतिकर समन्वय एवं सामंजस्य उपलब्ध होता हैं। 'वाक्यं रसात्मकम् काव्यम्' के

रूप में भी संस्कृत साहित्य ने औचित्य तथा आनंद को एक साथ स्थापित किया।

इतने प्राचीन व्यापक तथा विशाल संस्कृत साहित्य के स्वरूप तथा समय आदि की दृष्टि से इसे दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

(1) वैदिक संस्कृत

(2) लौकिक संस्कृत

वैदिक साहित्य में संहिता, आरण्यक, उपनिषद् तथा वेदांग आते हैं और लौकिक साहित्य में काव्य, नाटक, गद्य, कथा, गीति तथा चंपू ग्रंथों को लिया जाता है। संस्कृत साहित्य के इन दोनों भागों में वैदिक तथा लैकिक भाषा में वर्ण्य विषय, व्याकरण, छंद आदि की दृष्टि से पर्याप्त परस्पर भिन्नता है। दोनों का अलग-अलग विस्तार इतना अधिक है कि दोनों भागों के इतिहास पर विद्वानों ने बृहदाकार ग्रंथ लिखे हैं। इसमें हम वैदिक तथा लौकिक भाग का संक्षिप्त लेकिन सारगर्भित अंश आपको देंगे, जिससे आपको संस्कृत की मुख्य परंपरा को समझने में आसानी होगी। आप संस्कृत की पूर्ण परंपरा को समझ सकेंगे और उसपर अपना विचार प्रस्तुत कर सकेंगे।

वैदिक साहित्य

यह सर्वविदित तथ्य है कि संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा मानी जाती है और वैदिक संस्कृति संसार की प्राचीनतम संस्कृति। वैदिक साहित्य के सर्वप्रथम ग्रंथ वेद हैं। भारतीय संस्कृति के इतिहास में इसका अत्यंत महत्वपूर्ण एवं गौरवपूर्ण स्थान है। वेद शब्द विद्-ज्ञान सत्तायां लामे च विचारणे विद् धातु में घञ् प्रत्यय जोड़कर बनाया गया है जिसका अर्थ ज्ञान है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपनी ऋग्वेद भाष्य भूमिका में वेद शब्द को 'विदत्ति जानन्ति, विद्यत्ते भवन्ति', आदि इस प्रकार व्याख्या की है। अर्थात् जिनके द्वारा या जिनमें सारी सत्य विधाएँ जानी जाती हैं, विद्यमान, हैं या प्राप्त की जाती हैं, वही वेद है। सायणाचार्य ने वेद की व्याख्या करते हुए बताया है कि इप्ट की प्राप्ति तथा अनिष्ट परिहार के अलौकिक उपाय को बतलाने वाला ग्रंथ वेद है। वेदों को संहिता भी कहा जाता है। वेद की व्युत्पत्तियों से यह सिद्ध होता है कि वेद ज्ञान के वे अक्षय कोष हैं, जिनमें सभी विषयों का समावेश है। मनुस्मृति में कहा गया है कि वेद समस्त धर्म का मूल है। वेद परमात्मा के निःश्वास माने जाते हैं। वेदों का साहित्यिक महत्व भी कुछ कम नहीं है। महाकाव्य, गीतिकाव्य, ऐतिहासिक काव्य, गद्य, नाट्य, आख्यान साहित्य इत्यादि काव्य की सभी विधाओं की उत्पत्ति में वेदों का सक्रिय योगदान रहा है। सभी प्रकार का ज्ञान विज्ञान वेदों में ही निहित है। इहलौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों की प्राप्ति के स्थान वेद ही हैं।

वैदिक साहित्य के चार वेदों के अलावा ब्राह्मण, आरण्यक और वेदांग भी वैदिक साहित्य में समाविष्ट हैं।

(1) ऋग्वेद

(2) सामवेद

(3) यजुर्वेद

(4) अथर्ववेद

वेद का काल निरूपण

वेद का रचनाकाल निश्चित करने के प्रयास में अनेक कठिनाइयाँ हैं। उसमें प्रामाणिक अंत: साक्ष्य और वहि: साक्ष्य का प्राय: अभाव है। किसी प्रकार की तिथि अथवा संवत्सर का भी कोई उल्लेख नहीं हैं। वेदों के समय की पूर्व सीमा जानने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि ऋग्वेद स्वयं ही मानव जाति का प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ है। मैक्समूलर ने वेद की रचना बुद्ध से पूर्व रचित होने के कारण इसके सूत्रकाल का प्रारंभ 600 विक्रमपूर्व माना है। उन्होंने माना है कि :

1. विक्रमपूर्व 1200 से 1000 छन्द: काल - ऋग्वेद तथा सामवेद
2. विक्रमपूर्व 1000 से 800 मंत्रकाल - यजुर्वेद तथा अथर्ववेद
3. विक्रमपूर्व 800 से 600 ब्राह्मण काल - ब्राह्मण ग्रंथ तथा उपनिषद्

4. विक्रमपूर्व 600 – सूत्रकाल – सूत्र साहित्य (वेदांग)।

सामवेद में ऋग्वेद के मंत्रों को स्वर सहित उच्च ध्वनि से गाने की विधि दी गई है। इसमें देवताओं की स्तुति की जाती है। यजुर्वेद में इस बात का विवरण है कि ऋचाओं यानी ऋग्वेद के अंगों का यज्ञों में किस प्रकार और किस प्रयोजन से विधिवत् प्रयोग किया जाए।

अर्थवेद में जीवन के भौतिक तत्वों का वर्णन है।

ब्राह्मण ग्रंथ वेदों की रचना के बाद लिखे गए और इनके रचना काल के बारे में भी निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। ब्राह्मण ग्रंथ वेदों के वर्ण्य को बढ़ाते हैं और व्याख्या द्वारा उनका विस्तार करते हैं। चारों वेदों के नौ ब्राह्मण ग्रंथ हैं।

आरण्यक ग्रंथों में यज्ञ की आध्यात्मिकता का वर्णन है। आज आठ आरण्यक ग्रंथ उपलब्ध है। उपनिषदों को वेदों का निचोड़ कहा जाता है, जो आत्मतत्त्व और ब्रहमज्ञान का विवेचन करते हैं। यों कह सकते हैं कि वेदों (संहिताओं) और ब्राह्मणों मे यज्ञ के कर्मकांडीय पक्ष का सन्निवेश है, तो आरण्यों और उपनिषदों में यज्ञ के ज्ञान के आध्यात्मिक पक्ष का समाहार है। इस तरह चारों तरह के ग्रंथ कर्म मार्ग और ज्ञान मार्ग का समन्वय करते हैं। चारों वेदों से संबंधित 108 उपनिषदों का उल्लेख है, आज लगभग 20 ग्रंथ उपलब्ध हैं। प्रमुख उपनिषद हैं केन, तैत्तरीय कठ, मुंडक, प्रश्न ऐतरेय छांदोग्य।

वेदांग वैदिक साहित्य की अंतिम कड़ी हैं। कुल छह वेदांग हैं जिनके कर्ण्य का आगे उल्लेख किया जा रहा है।

1) शिक्षा – वेद पाठ के उच्चारण की शिक्षा

2) कल्प – यज्ञ के विधि-विधान, कर्मानुष्ठान का ज्ञान

3) व्याकरण – वेद की भाषा का रचना और अर्थ संबंधी विवेचन

4) निरूक्त – शब्द ज्ञान और शब्द की व्युत्पत्ति

5) ज्योतिष – यज्ञ की सफलता के लिए अनुकूल तिथि, समय की गणना

6) छन्द – वैदिक छन्दों का वर्णन।

लौकिक साहित्य

लौकिक साहित्य के बाद लगभग ई.पू. 500 से लौकिक साहित्य का समय शुरू होता है। लौकिक साहित्य में निम्नलिखित शामिल हैं।

1. इतिहास और पुराण

2. कथा साहित्य और काव्य (श्रव्य काव्य)

3. रूपक और नाट्यशास्त्र (दृश्य काव्य)

4. भाषा संबंधी साहित्य (छन्द, व्याकरण, काव्य शास्त्र)

5. दर्शन

6. वाड्.मय (धर्म, अर्थ, काम संबंधी शास्त्र; चिकित्सा, गणित, ज्योतिष आदि।)

इतिहास ग्रंथ

वाल्मीकिकृत रामायण और व्यासकृत महाभारत को इतिहास ग्रंथ माना जाता है ये दोनों लौकिक संस्कृत की दो प्रथम कृतियाँ है और रामायण को संस्कृत का 'आदि काव्य' कहा जाता है। 'इतिहास' का शाब्दिक अर्थ है 'ऐसा था'। इस दृष्टि से ये दोनों ग्रंथ पूर्ण रूप से इतिहास के ग्रंथ न होते हुए भी, न सिर्फ़ धार्मिक या आध्यात्मिक ग्रंथ थे, न काल्पनिक कथाएँ। हम यह मानते हैं कि राम और कृष्ण अवतार थे, धरती पर धर्म की रक्षा के लिए उनका अवतार हुआ था और इन ग्रंथों में उनके जीवन का आख्यान हैं।

रामायण का रचना काल भी पर्याप्त विवाद का विषय रहा है। भारतीय तथा पश्चात्य विद्वानों ने रामायण के रचना काल को निर्धारित करने का पर्याप्त प्रयत्न किया, लेकिन किसी एक समय को मानने में सभी एकमत नहीं हैं। परम्परागत विश्वासों से परे यदि हम तार्किक बुद्धि का आश्रय लें, तो रामायण का वर्तमान परिनिष्ठित स्वरूप ईसा पूर्व 5वीं शती तक स्थिर होने के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं अर्थात् बुद्ध से पहले वाल्मीकि रामायण का वर्तमान रूप स्थिर हो चुका था।

भारतीय जनमानस की धार्मिक आस्था का मुख्य आधार यह रामायण तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, परिस्थितियों पर विशद प्रकाश डालता है। भारत में राष्ट्रीय जीवन के निर्माण में रामायण का बहुत बड़ा योगदान है।

रामायण की लोकप्रियता में उसकी सहज शैली, असाधारण वर्णन शक्ति एवं जीवंत चरित्र चित्रण का भी बहुत बड़ा योगदान है। इस महाकाव्य में सभी रस प्राप्त होते हैं। वाल्मीकि रामायण का प्रचार-प्रसार केवल भारत वर्ष तक ही सीमित नहीं है। यह संपूर्ण भारत में लोकप्रिय होकर जावा, सुमात्रा, बाली, स्याम, आदि देशों तक फैला। वाल्मीकि रामायण का भारत के परवर्ती साहित्य के ऊपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा और सभी भाषाओं के प्रसिद्ध कवियों, नाटककारों तथा चंपू रचनाकारों ने अपनी रुचि के अनुसार रामायण के विभिन्न अंशों को ग्रहण किया।

महाभारत में तत्कालीन साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि विषयों का समावेश है। महाभारत एक अत्यंत श्रेष्ठ आचार संहिता का भी निदर्शन उपस्थित करता है। महाभारत के रचयिता परम्परा से व्यास मुनि माने जाते हैं। इनका पूरा नाम कृष्ण द्वैपायन व्यास था। महाभारत के अंत:साक्ष्य से प्रमाणित है कि व्यास कौरवों और पांडवों के जीवन की सभी प्रमुख घटनाओं से प्रत्यक्षत: परिचित रहे। वर्तमान महाभारत में एक लाख श्लोक प्राप्त होते हैं इसलिए इसका नाम 'शतसाहस्री संहिता' भी है। महाभारत का रचना काव्य अत्यंत विवादास्पद रहा है। ये श्लोक संभवत: एक ही बार नहीं किये गये बल्कि सैकड़ों वर्षों की अवधि में इसके श्लोक जुड़ते गये, जिस कारण इसके तीन रूप बने। प्रारंभिक लघु रूप (जय), विस्तृत रूप (भारत) और वर्तमान रूप (महाभारत)।

पुराण

इतिहास ग्रंथों के बाद लौकिक साहित्य में महत्वपूर्ण ग्रंथ पुराण हैं। पुराण धार्मिक ग्रंथ हैं। ये अवतारों और धार्मिक कथाओं के काव्य हैं। 'पुराण' का तात्पर्य है 'प्राचीन'। इससे इनको रचना काव्य का थोड़ा संकेत मिलता है। ई.पू. 300 से लेकर ई 15 वीं सदी तक पुराण लिखे गये और इनके कलेवर में प्रक्षेपण (परवर्ती लेखकों द्वारा अंश जोड़ा जाना) के कारण विस्तार, परिवर्तन भी होता गया। आज 18 पुराण प्राप्त हैं - मत्स्य, कूर्म, वराह, वामन, भागवत, ब्रह्मांड, ब्रह्मवैवर्त, विष्णु, नारद, गरुड, वायु, अग्नि, पद्म, लिंग, स्कंद और भविष्यत्। इनमें भागवत सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जो परवर्ती कृष्ण भक्ति साहित्य का प्रेरणा स्रोत है। विष्णु और नारद पुराण में भक्ति के दार्शनिक पक्ष का विवेचन है।

संस्कृत काव्य

साहित्य शास्त्रियों ने रस को काव्य की आत्मा स्वीकार किया है। इस काव्य के मुख्यतया दो भेद किए गए हैं। दृश्य काव्य तथा श्रव्य काव्य जिसका विवरण नीचे गया है।
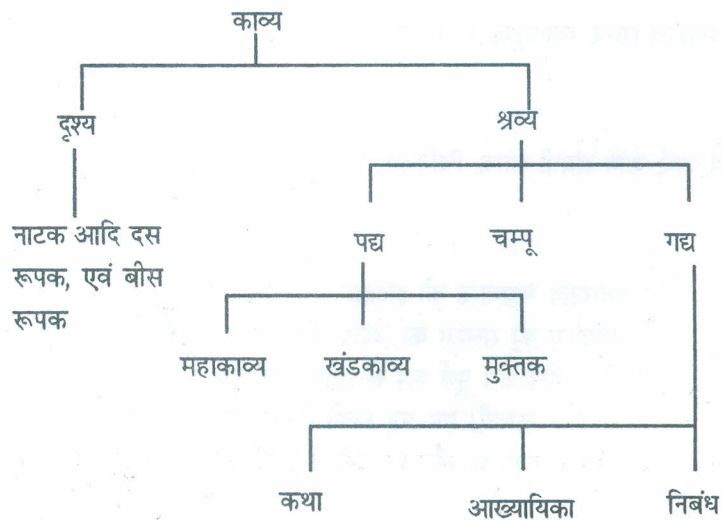
संस्कृत के साहित्यकारों में कालिदास का नाम अग्रगण्य है। इनका समय विवादस्पद है और अनुमानतः वे ई. पहली सदी से छठी सदी के बीच रहे होंगे। कुमार संभव और रघुवंश इनके महाकाव्य हैं। 'अभिज्ञान शाकुंतलम', 'मालविकाग्नि मित्रम' और 'विक्रमोर्वशीयम' इनके नाटक हैं और 'मेघदूत' और 'ऋतु संहार' इनकी काव्य कृतियाँ हैं। अन्य प्रमुख साहित्यकार हैं भारवि ('किरातार्जुनीयम्) माघ (शिशुपाल वधम्)। कवि बाणभट्ट ने गद्य में 'कादम्बरी' नामक कथा लिखी, जो विश्व का पहला उपन्यास माना जा सकता हैं। उन्हीं का 'हर्ष चरित' संसार की पहली जीवनी भी है।

ज्योतिष, गणित, चिकित्सा शास्त्र आदि क्षेत्रों में लौकिक संस्कृत में मौलिक और विपुल साहित्य प्राप्त होता है।

27.2.3 भाषा का अध्ययन

भारतीय वाङ्.मय के अध्ययन-अनुशीलन से विदित होता है कि ऋषि मुनियों के समय तक व्याकरण शास्त्र की अनेक विधाएँ प्रकाश में आ चुकी थीं। गार्ग्य, गालव, शाकटायन, शाकल्य आदि भाषा शास्त्रियों द्वारा प्रवर्तित व्याकरण शास्त्र की यह महान् थाती पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि के हाथों में आयी। भाषा का जो विस्तृत स्वरूप तत्कालीन भारत की करोड़ों जनता द्वारा बोला जाता था, उसे इस मुनित्रय ने अपनी महान् कृतियों में बाँधा। उनके बाद संस्कृत के सैकड़ों वैयाकरणों ने वार्तिक, वृत्ति, व्याख्या और टीकाओं द्वारा व्याकरण ज्ञान की इस पंरपरा को आगे बढ़ाया। वार्तिक, वृत्ति आदि मूल व्याकरण ग्रंथों की व्याख्या करते हैं और व्याकरण के दार्शनिक चिंतन के पक्ष को उभारते हैं।

पाणिनि और उनकी कृत्ति अष्टाध्यायी

संस्कृत में व्याकरण चिंतन वेदों जितना पुराना है। हमने वेदांगों की चर्चा के संदर्भ में चर्चा की थी कि उच्चारण, शब्द निर्माण, वाक्य की अभिव्यक्ति, शब्दार्थ, छंद आदि को वेदांगों में स्थान दिया गया। लेकिन वेदों की संस्कृत भाषा में काल गति के कारण परिवर्तन हुए और विविध प्रयोगों के स्थान पर मानकीकरण की आवश्यकता पड़ी। पाणिनि ने इसी परिप्रेक्ष्य में प्रख्यात संस्कृत व्याकरण 'अष्टाध्यायी' का प्रणयन किया, जो लौकिक संस्कृत का अत्यंत संक्षिप्त, सूत्रबद्ध, वैज्ञानिक व्याकरण है। इसकी वैज्ञानिकता ने विश्व भर के भाषावैज्ञानिकों को चमत्कृत कर दिया। यह माना जाता है कि पाणिनि के व्याकरण के सूत्र सीधे कंप्यूटर के प्रोग्राम के रूप में व्यवहार में लाये जा सकते हैं।

पाणिनी ने आठ अध्यायों में निबद्ध 'अष्टाध्यायी' में व्याकरणिक नियमों और अपवादों का विस्तृत वर्णन नहीं दिया है, बल्कि शब्द और वाक्य की रचना को 4000 सूत्रों में प्रस्तुत किया। इनके 14 मूलभूत सूत्र हैं, जिनमें हम माहेश्वर (महेश्वर की कृपा से प्राप्त) सूत्र कहते हैं। इन सूत्रों को समझना भी कठिन है, इसीलिए इनकी व्याख्या करते हुए अन्य वैयाकरणों ने कारिका, वृत्ति आदि व्याख्या के ग्रंथ लिखे। 'सिद्धांत कौमुदी' और उसकी भी व्याख्या करने वाली 'लघु सिद्धांत कौमुदी' आदि पाणिनि के व्याकरण के व्याख्या ग्रंथ है।

कात्यायन

महाभारत में कात्यायन को एक वर्तिकार के रूप में स्मरण किया जाता हैं किंतु कात्यायन का नाम व्याकरणशास्त्र के महान् प्रतिभाशाली आचार्य पाणिनि और महाभाष्यकार पतंजलि के साथ लिया जाता है। इस मुनित्रय की व्याप्ति और ख्याति व्याकरण शास्त्र के चारों ओर बिखरी पड़ी है। कात्यायन ने पाणिनि व्याकरण की पूर्ति के लिए वार्तिकों की रचना की थी। इन वार्तिकों की मान्यता पाणिनि के सूत्रों जैसी ही है। इनका पूरा नाम वररुचि कात्यायन था। कात्यायन शाखा का अध्ययन महाराष्ट्र में प्रचलित है, इसलिए लगता है कि कात्यायन दाक्षिणात्य थे। इनका समय 2700 वर्ष वि. रखा गया है।

इन्होंने काव्य, नाटक, व्याकरण, धर्मशास्त्र आदि कई विषयों पर ग्रंथ लिखे हैं जिनमें प्रमुख वार्तिक पाठ, स्वर्गारोहण काव्य, भ्राज संज्ञक श्लोक, स्मृति कात्यायन और उभय सारिका भाज।

पतंजलि

पतंजलि एक महान् विचारक मनस्वी विद्वान थे। व्याकरण के क्षेत्र में नए युग का आरंभ कर अपनी असामान्य प्रतिभा की छाप वे आगे की पीढ़ियों पर छोड़ गये। उनको पाणिनीय व्याकरण का अद्धितीय व्याखाता कहा जाता है। पाणिनि के वे कटु आलोचक थे। इस प्रकार की निर्भीकता और स्वच्छ आचरण

ही पंडित्य का अलंकरण होता है। पाणिनि के विवेक, व्यक्तित्व और विचारों ने पतंजलि को इतना ऊँचा उठाया, इसकी अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त है कि उन्होंने पाणिनि को चमकाया।

पतंजलि व्याकरण के साथ-साथ सांख्य, योग, न्याय, आयुर्वेद, कोशकला, रसायन आदि के अधिकारी विद्वान थे। अनेक विद्वानों ने प्रामाणिक रूप से पतंजलि का जन्म 1200 वि. पूर्व माना है। लेकिन कुछ विद्वानों ने इस मत का विरोध किया है। उनके विभिन्न कृतियों का उल्लेख मिलता है, जिसमें महानंद काव्य, चरक परिष्करण ग्रंथ, कोश ग्रंथ, सांख्य शास्त्र, रस शास्त्र और लौह शास्त्र। इसके अतिरिक्त तीन अन्य ग्रंथ भी हैं, सामवेदीय निदान सूत्र, योग सूत्र और महाभाष्य 'महाभाष्य'। व्याकरणशास्त्र का विश्वकोश है।

इन वैयाकरणों के अतिरिक्त वररुचि, शवरस्वामी, हर्पवर्धन, शांतनवाचार्य और शन्तनु आदि वैयाकरणों ने लिंगानुशासन, गणपाठ, उणादि सूत्र, फिट् सूत्र और धातु पाठ आदि विभिन्न ग्रंथों को लिखकर व्याकरण शास्त्र का सर्वांगीण विकास किया।

व्याकरणशास्त्र का सर्वेक्षण करने पर हमें ऐसा लगता है कि संसार के किसी भी साहित्य में भाषाशास्त्र पर इतना गंभीर विचार नहीं किया गया है।

27.2.4 संस्कृत भाषा का परिचय

वाक्य संरचनाः हिंदी की तरह संस्कृत में भी वाक्य कर्ता, कर्म, क्रिया आदि पदबंधों से मिलकर बनता है।

रामः फलं खादति।

राम फल खाता है (या) खा रहा है।

(संस्कृत में फल कर्म तथा द्वितीया विभक्ति है)

संस्कृत में पदक्रम बहुत लचीला है। इसे बिना अर्थ में परिवर्तन किए हम अंग्रेजी Mohan killed Sohan को Sohan killed Mohan के पदक्रम से नहीं बदल सकते, क्योंकि कर्ता और कर्म बदल जाते हैं। संस्कृत में हम पदक्रम बदलकर वाक्य बना सकते हैं और उनके अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता है जैसे :

रामेण रावणः हतः।

रामेण हतः रावणः।

रावण रामेणः हतः। अर्थात रावण राम से मारा गया (या) राम ने रावण को मारा।

संस्कृत के इन वाक्यों में राम कर्ता है तथा वाच्य के कारण तृतीया विभक्ति में है। 'रावण' कर्म है तथा प्रथमा विभक्ति में है।

इसका एक प्रमुख कारण है संस्कृत का हर संज्ञा शब्द अपने कारकीय संबंध के साथ प्रकट होता है। 'बालकः' कर्ता कारक है, 'बालकम्' कर्म कारक है। इसलिए वाक्य में पद वाक्य में कहीं भी आएँ, अपने कारकीय संबंध प्रकट करते हैं और अर्थ की अभिव्यक्ति में कोई कठिनाई नहीं होती। आगे हम संज्ञा शब्दों के कारकों की रचना का परिचय प्राप्त करेंगे।

संस्कृत के संज्ञा रूप

संस्कृत भापा के सभी शब्दों का निर्माण धातु (root) याने शब्द के मूल रूप तथा प्रत्ययों के जोड़ से होता है। संज्ञा पदों का निर्माण सुप् प्रत्यय (सुबंत) जोड़ने से होता है और क्रिया पदों का निर्माण तिङ् प्रत्यय (तिङंत) जोड़ने से। धातु रूप की अंतिम ध्वनि के आधार पर अलग-अलग प्रत्यय जुड़ते हैं।

संस्कृत के संज्ञा धातु कई प्रकार के हैं। इन्हें 'गण' की संज्ञा दी जाती है। जैसे राम शब्द अकारांत है, मुनि शब्द इकारांत है संस्कृत में तीन लिंग भी हैं। लिंग के अनुसार भी शब्द रूप अलग हो जाते हैं जैसे 'पति' पुल्लिंग इकारांत शब्द है। 'मति' इकारांत स्त्रीलिंग शब्द है और वारि (पानी) इकारांत नपुंसक लिंग है। इनकी रूपावालियाँ अलग हैं।

संज्ञा पद और कारक

संस्कृत के संज्ञा शब्द सभी तीन वचनों में प्रयुक्त होते हैं।

कर्ता	एकवचन	-	बालकः	एक लड़का
	द्विवचन	-	बालकौ	दो लड़के
	बहुवचन	-	बालकाः	कई लड़के (तीन या अधिक)

हर वचन के आठ कारक हैं। यहाँ हम 'राम' शब्द के तीन वचनों में आठ कारकों के रूप देखेंगे। मूल रूप/राम्/ मानकर हम उन कारक चिह्नों को भी दिखा रहे हैं, जिन्हें हम विभक्ति कहते हैं।

अकारान्त पुल्लिंग शब्द रूप - 'राम' शब्द

कारक	विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	विभक्ति चिह्न		
कर्ता	प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः	अः	औ	आः
कर्म	द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्	अम्	औ	आन्
करण	तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः	एन	आभ्याम्	ऐः
संपदान	चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः	आय	आभ्याम्	एभ्यः
अपादान	पंचमी	रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः	आत्	आभ्याम	एभ्यः
संबंध	पष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणात्	अस्य	अयोः	आनाम्
अधिकरण	सप्तमी	रामे	रामयोः	रामेषु	ए	अयोः	एसु
संबोधन	अष्टमी	हे राम!	हे रामौ!	हे रामाः!	अ	औ	आः

नोटः र के कारण ।न। का ।ण। बनता है, ।स। का ।प। बनता है।

इस तरह हर संज्ञा शब्द के तीन वचनों और आठ कारकों में कुल 24 रूप बनते हैं।

कारकीय रचना की दृष्टि से संस्कृत जटिल भाषा है। अलग-अलग संज्ञा शब्दों के साथ अलग-अलग विभक्ति चिह्न प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण के तौर पर आकारांत स्त्रीलिंग शब्द 'लता' के कारकों और विभक्ति चिह्नों का अवलोकन कीजिए और 'राम' शब्द से इसकी तुलना कीजिए। इसके लिए ।लत्। को मूल रूप मान लें।

लता अकारान्त स्त्रीलिंग शब्द

विभक्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन	विभक्ति चिह्न		
प्रथमा	लता	लते	लताः	आ	ए	आः
द्वितीया	लताम्	लते	लताः	आम्	ए	आः
तृतीया	लतया	लताभ्याम्	लताभिः	अया	आभ्याम्	आभिः
चतुर्थी	लतायै	लताभ्याम्	लताभ्यः	आयैः	आभ्याम्	आभ्यः
पंचमी	लतायाः	लताभ्याम्	लताभ्यः	आयाः	आभ्याम्	आभ्यः
षष्ठी	लतायाः	लतयोः	लतानाम्	आयाः	अयोः	आनाम्
सप्तमी	लतायाम्	लतयोः	लतासु	आयाम्	अयोः	आसु
अष्टमी	हे लते!	हे लते!	हे लताः!	ए	ए	आः

आपने ध्यान दिया हो कि कुछ विभक्ति चिह्नों को छोड़कर शेप भिन्न है। संस्कृत में पुल्लिंग शब्दों के लगभग 10 मूल रूप हैं जैसे राम (अ), सखा (आ) मुनि (इ), साधु (उ) गौ (औ), मरुत् (हलंत), विद्वान् (हलंत), दाता (तृ), पिता (तृ)। स्त्रीलिंग शब्दों के लगभग 10 मूल रूप हैं, जैसे लता (आ), मति (इ), नदी (ई), माता (तृ), धेनु (उ), वधू (ऊ), नौ (औ)। और नपुंसक लिंगों के 10 मूल रूप हैं। जैसे फलम् (अम्), आत्मन् (हलंत), शशि (इ), मधु (उ), जगत् (हलंत), पय: (अय:) आदि। इन सभी मूल रूपों के विभक्ति चिह्नों के समुच्चय (sets) अलग-अलग हैं। इस कारण संस्कृत भापा के संज्ञा शब्दों का प्रयोग जटिल हो जाता है। इस जटिलता के कारण संस्कृत भापा को क्लिष्ट कहा जाता है, जहाँ मूल रूप और विभक्ति चिह्न का श्लेप कुछ हद तक जटिल प्रक्रिया है।

संज्ञा शब्दों की तरह सर्वनामों के भी 24 रूप बनते है। पुल्लिंग स: (वह) के रूप देखिए।

कर्ता	स:	तौ	ते
कर्म	तम्	तौ	तान्
करण	तेन	ताभ्याम्	तै:

वाक्य में सर्वनाम और विशेषण की संज्ञा से अन्विति होती है। अर्थात निम्नलिखित वाक्यों में समान लिंग और वचन के सर्वनाम और संज्ञा शब्द ही प्रयुक्त हो सकते हैं। उदारहण के लिए

पुल्लिग	स: ज्येष्ठ: बाल:	वह बड़ा लड़का है।
	तौ ज्येप्ठौ बालौ: वे दो बड़े लड़के हैं।	
	ते ज्येप्ठा: बाला:	वे बड़े लड़के हैं।
स्त्रीलिंग	सा ज्येष्ठा बाला	वह बड़ी लड़की है।
	ते ज्येप्ठे बाले	वे (दो) बड़ी लड़कियाँ हैं।
	ता: ज्येप्ठा: बाला:	वे बड़ी लड़कियाँ है।

इसी तरह तम बालं (उस लड़के को), तेन बालेन (उस लड़के ने) आदि रूपों में भी इस श्लिप्टता को देख सकते हैं।

संस्कृत के क्रिया रूप

श्लिप्टता के लक्षण संस्कृत में सब से अधिक क्रिया में प्रकट होते हैं। हिंदी जैसी आधुनिक भाषाएँ क्रिया रचना दृप्टि से अश्लिप्ट (analytic) कही जाती हैं, क्योंकि यहाँ क्रिया रचना बहुत आसान है। उदाहरण के लिए हिंदी में क्रिया के मूल रूप (धातु) में काल के लिंग वचन के रूप जोड़ने पर क्रिया की निष्पत्ति हो जाती है। जैसे

धातु	काल (लिंग, वचन शब्दों के साथ)	
कर, लिख, पढ़, सुन	पुल्लिंग	स्त्रीलिंग
जा, आ, बता	एक. ता है	ती है
सी, खे, खो, बो,	बहु. ते हैं	ती हैं

हिंदी में काल के रूप भी सीमित है। प्रमुख काल है नित्य वर्तमान (करता है), सामान्य वर्तमान (कर रहा है), भविप्यत् (करेगा), सामान्य भूत (किया)। इसके साथ कुछ काल वृत्ति सूचक रूप हैं करता था, करता हो, करता होगा, करता होता आदि।

हिंदी की तुलना में संस्कृत की क्रिया रचना अधिक जटिल है। संस्कृत में हर क्रिया के हर काल के तीन पुरुपों और तीन वचनों में नौ रूप बनते हैं। जैसे

सं: (बाल:) पठति - लड़का पढ़ता है का उदारहण लें। इसके नौ रूप इस तरह बनेंगे।

		एकवचल	द्विवचन	बहुचनन
III Person	अन्य पुरुष	पठति	पठतः	पठन्ति
II Person	मध्य पुरुष	पठति	पठथः	पठथः
I Person	उत्तम पुरुष	पठामि	पठावः	पठामः

कृ धातु से हर क्रिया 3 वाक्यों में आ सकती है। जैसे वह के संदर्भ में दो वाक्यों का अवलोकन कीजिए। पुल्लिंग, तीन वचनों में

कर्तृवाच्य (वह करता है)	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति
कर्म वाच्य (किया जाता है)	कुयते	कुर्येते	कुर्यन्ते

संस्कृत में दो पद हैं - परस्मैपद, जहाँ दूसरों के संदर्भ में चर्चा की जाए और आत्मने पद, जहाँ अपने संदर्भ में चर्चा की जाए।

काल वृत्ति और प्रयोग

'सः पठति' - वह पढ़ता है सामान्य वर्तमान की क्रिया है। अगर इसी को हम भूतकाल में कहना चाहें तो रूप बनेंगे

अपठत्   अपठताम्   अपठन्

भविष्यत काल के भी 9 रूप इसी तरह बनेंगे

पठिष्यति   पठिष्यतः   पठिष्यन्ति

हर काल या वृत्ति के इन नौ रूपों को लकार कहा जाता है। वर्तमान काल **लट्** लकार है, भविष्यत् काल लृट् लकार है सामान्य भूतकाल **लङ्.** लकार है। लोट् लकार आज्ञार्थ है। इस तरह हर क्रिया के दस लकार हैं और सामान्य धातु, प्रेरणार्थक, इच्छार्थक, अतिशयता एवं पुनरुक्ति ये पाँच प्रयोग हैं।

इस तरह 9 पुरुष-वचन रूपों, 15 काल आदि रूपों, 3 वाच्यों और 2 पदों के संयोजन से संस्कृत में हर क्रिया धातु के लगभग 540 रूप बन सकते हैं। इसकी तुलना में हिंदी में करता, किया, करेगा, करे आदि के विभिन्न लिंग-वचन-पुरुष भेदों के लगभग 27 ही रूप बनते हैं। इतनी बड़ी संख्या से इतनी कम संख्या में बदलाव अचानक ही नहीं हुआ। पालि, प्राकृत और अपभ्रंशों में क्रम से सरलीकरण की प्रक्रिया से रूप कम होते गये, जिसे हम आगे के प्रकरणों में देखेंगे। संस्कृत में हर व्याकरणिक विशेषता के लिए अलग क्रिया रूप की आश्यकता थी। हिंदी भाषा में मूल धातु से /है, था/ आदि सहायक क्रियाओं को अलग करने और सक, चुक आदि वृचि सूचक क्रियाओं को धातु से अलग करने के कारण यह संभव हुआ है। इसी संदर्भ में हम हिंदी की क्रिया को संस्कृत की तुलना में अश्लिष्ट (analytic, न जुड़ा हुआ) कहते हैं।

अंत में संस्कृत की क्रिया रचना की एक और विशेषता की चर्चा करेंगे, जो विभेदीकरण प्राकृत में ही समाप्त हो गया। संस्कृत के क्रिया धातु लगभग 200 हैं, जिन्हें दस अलग वर्गों में बाँटा गया है। ये गण कहलाते हैं। भू (होना) धातु से भ्वादि गण, अद् (खाना) धातु से अदादि गण आदि। इसकी रूपावलियाँ भिन्न हैं। इस कारण छात्र को हर गण के अनुसार सारे रूप जानना आवश्यक हो जाता है। पालि भाषा में 10 की जगह 6 गण रह गये और प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिंदी में सिर्फ़ एक ही धातु रूप रह गया। अर्थात हिंदी में धातु रूप जो भी हो (कर, लड़, हो, खो, खो, आदि) उनके क्रिया रूप हर जगह एक जैसे बनते हैं।*

* नोटः जा से भूतकाल 'गया' बनना अपवाद है। ऐसे अपवाद हिंदी में अति सीमित हैं।

27.3 पालि

27.3.1 नामकरण और क्षेत्र

पालि के विकास के अध्ययन की सामग्री पालि साहित्य तथा अशोक के अभिलेखों में प्राप्त होती है। पालि में बौद्ध धर्म के थेरवाद अथवा हीनयान सम्प्रदाय के धार्मिक साहित्य की रचना हुई है।

वास्तव में 'पालि' शब्द किसी भाषा का द्योतक नहीं है। पालि का अर्थ है 'मूलपाठ' अथवा 'बुद्धवचन'। पालि के स्वरूप पर विचार करने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि पालि भाषा भारत के किसी प्रदेश की भाषा रही होगी या यह भापा भारत के किस प्रदेश की भाषा का आधार थी।

पं. विष्णु शेखर भट्टाचार्य पालि शब्द को संस्कृत 'पंक्ति' शब्द से निकला हुए मानते हैं। वह इसके ध्वनि परिवर्तन का क्रम पंक्ति पन्ति>पत्ति>पट्ठि>पल्लि>पालि से माना है। हमें बौद्ध साहित्य में पालि के अर्थ में 'पड्.क्ति' शब्द मिलता है। जो इस बात की पुष्टि करता है कि उपरोक्त ध्वनि परिवर्तन उचित है। कुछ विद्वानों का मानना कि 'पालि' गाँवों की भाषा थी और संस्कृत नगरों में बोली जाती थी।

मैक्स वालेसर ने पालि शब्द की व्युत्पत्ति 'पाटलिपुत्र' से मानी है। उनका मानना है कि ग्रीक में 'पाटलिपुत्र' को 'पालिबोथ्र' लिखा गया है। भिक्षु जगदीश कश्यप ने 'पालि' महाव्याकरण में पालि शब्द की व्युत्पत्ति 'परियाम' (सं. पर्याय) शब्द से किया है, जिसे आज हम पालि भाषा कहते हैं। यह उसका प्रारंभिक नाम नहीं है। भाषा विशेष के अर्थ में पालि शब्द का प्रयोग अपेक्षाकृत नवीन है। कम से कम ईसा की चौदहवीं शताब्दी से पूर्व उसका इस अर्थ में प्रयोग नहीं मिलता है। पालि शब्द का सबसे पहला व्यापक प्रयोग हमें आचार्य बुद्धघोष (चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी) की अट्ठकथाओं और उनके विशुद्ध भाग में मिलता है। आचार्य बुद्धघोप के कुछ ही समय पूर्व लंका में लिखे गए दीप वंश ग्रंथ में भी (चौथी शताब्दी की रचना) पालि शब्द का प्रयोग बुद्ध वचन के अर्थ में ही किया गया है। आचार्य बुद्ध घोष के बाद भी सिंहल देश में पालि शब्द का प्रयोग उपर्युक्त दोनों अर्थों में होता रहा। पालि शब्द का प्राचीनतम रूप हमें 'परियाय' शब्द में मिलता हैं। 'परियाय' शब्द त्रिपिटक में अनेक बार आया है।

पालि भाषा के विषय में सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि यह किस प्रदेश की मूल भाषा थी? सिंहली परंपरा उसे मागधी या मगध की भाषा मानती है। प्रोफेसर आर डेविड्स का आधार कौशल प्रदेश में छठी और सातवीं शताब्दी ईसवी पूर्व में बोली जाने वाली भाषा मानते हैं।

बेस्टर गार्ड इसे उज्जयिनी प्रदेश की बोली मानते है। लेकिन आर.ओ. फ्रैंक इसका उद्गम स्थान विंध्य प्रदेश मानते हैं। कुछ विद्वान इसे कलिंग देश की भाषा मानते हैं क्योंकि यह लंका का समीपी राज्य था।

27.3.2 पालि साहित्य का उद्भव और विकास

भगवान बुद्ध के सभी उपदेश मौखिक थे। यद्यपि लेखन कला का आविष्कार भारत में बुद्ध युग के बहुत पहले ही हो चुका था। फिर भी बुद्ध के उपदेश भगवान बुद्ध के समय में ही लेखबद्ध कर लिए गए हों, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। पालि साहित्य का विस्तार पालि या पिटक साहित्य और अनुपालि या अनुपिटक साहित्य में होता है। पालि या पिटक साहित्य तीन भागों में विभक्त है। सुत्त पिटक, विनय पिटक और अभिधम्म पिटक। बौद्ध धर्म का प्राचीनतम रूप त्रिपिटकों में मिलता है। त्रिपिटक के जो नाम ऊपर बताए गए हैं, वे वास्तव में सुप्त, विनय और अभिधर्म के बिगड़े हुए रूप हैं। ये तीनों ग्रंथ बौद्ध धर्म के आधार ग्रंथ हैं। इसकी भापा वैदिक संस्कृत के काफी निकट है। इसलिए विद्वानों का मत है कि त्रिपिटकों की भाषा वैदिक संस्कृत से प्राप्त की गई है। विद्वानों का यह भी मत है कि संस्कृत से पालि और पालि से प्राकृत का सीधा क्रम नहीं है। इसमें वैदिक संस्कृत से पालि का विकास क्रम चलता रहा और लौकिक संस्कृत से प्राकृत का एक अलग क्रम चलता रहा जो दोनों पालि और प्राकृत को अलग करता है।

यद्यपि बौद्ध वचनों के सभी उपदेश मौखिक थे, लेकिन अशोक के शिलालेखों में पायी गई भाषा पालि के विषय में जानकारी देती है। इसे अशोक के शिलालेखों की भाषा कह सकते हैं। शिलालेखों पर पालि भाषा लिखने का सम्राट अशोक का एक ही उद्देश्य था कि इससे पूरी जनता को आदेश दे तथा विस्तृत रूप से धर्म की सूचना जनता के बीच पहुँचाए। इस शिलालेखों का समय ई.पू. दूसरी-तीसरी शताब्दी माना जा

सकता है। स्थानीय बोलियों के आधार पर हमें इस भापा के तीन रूप मिलते हैं पूर्वी, पश्चिमी और उत्तरी। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बोलचाल के स्तर पर पालि के अलग-अलग रूप रहे होंगे।

पालि कृतियों में 'मिलिन्द पन्ह' के बाद आचार्य बुद्धदत्त की कृतियों का स्थान आता है। इन्होंने 'अभिधर्म पिटक' की अट्ठकथाओं का संक्षेप अभिधम्मावतार और 'विनय पिटक' की अट्ठकथाओं का संक्षेप 'विनय विनिच्छय' में किया है। आचार्य बुद्धदत्त के ही समय में अनुपिटक साहित्य के एक महान् व्याख्याकार बुद्धघोष हुए। बुद्धघोष के समय जिन बौद्ध विद्वानों ने महात्मा बुद्ध के विपय में अपनी साहित्य रचना की उनमें अश्वघोष, नागार्जुन, वसुबंधु और दिङ्नाग प्रमुख हैं। बुद्धघोप ने सिंहली में अनूदित अट्ठकथाओं का अनुवाद मागधी में किया और व्याख्या ग्रंथ का नाम 'विसुद्धिमग्गा' रखा। उन्होंने 'समन्त पासादिका', 'कंरवा वितरणी' के अतिरिक्त प्रथम चार निकायों पर भी अट्ठकथाएँ लिखीं जिनमें से 'दीघनिकाय' पर 'सुमंगल विलासिनी', मज्झिम निकाय पर 'पपंचसूदनी', संयुक्त निकाय पर 'सारत्थप्प कासिनी', और अंगुत्तर निकाय पर 'मनोरथ पुरणी' प्रसिद्ध हैं। अनुराधापुर महाविहार की परंपरा पर उन्होंने अभिधम्म पिटक के सात ग्रंथों पर अट्ठकथाएँ लिखीं जिनके नाम हैं, अट्ठशालिनी संमोह विनोदिनी और पंचध करणट्ठक। पालि भापा में उपलब्ध 'जातकट्ठवण्णना' किसी सिंहली पुस्तक का अनुवाद है।

बुद्धघोष के बाद अट्ठकथाकार के रूप में थेर धम्मपाल का नाम उल्लेखनीय है। बुद्धघोप द्वारा 'खुद्दकनिकाय' के अछूते छह ग्रंथों पर उन्होंने संयुक्त रूप से 'परमत्थदीपनी' ग्रंथ लिखा जिसका मूल आधार सिंहली कथाएँ थी। उन्होंने बुद्धघोष के विसुद्धिमग्गा पर भी 'परमत्थमंजूपा' नामक शोधपूरक टीका लिखी।

पालि काव्य

पालि साहित्य के क्षेत्र में काव्यों की रचना बहुत कम हुई है। मानव जीवन की व्यापक एवं गहन अनुभूतियों का पहला दर्शन हमें त्रिपिटकों में दिखाई देता है। त्रिपिटकों में संकलित भगवान् तथागत के ऊँचे विचारों का विश्लेषण किया गया है। यद्यपि उसमें काव्य संबंधी सभी गुण पाए जाते हैं लेकिन हम उसे काव्य न कहकर काव्यों के उपजीवी, पालि काव्यों का जन्मदाता कह सकते हैं। विपय की दृष्टि से पालि में दो प्रकार के काव्यों की रचना हुई (1) वर्णनात्मक, (2) आख्यानात्मक। पहली श्रेणी के काव्य ग्रंथों में 'कस्सप' का अनागतवंश (प्राग्-बुद्धघोप) भिक्षुकल्याण प्रियकृत 'तेलकाटहगाथा', बुद्धरक्षित का 'जिनालंकार', मेघंकरकृत 'जिनचरित'। दूसरी श्रेणी के आख्यान काव्यों में प्रथम संस्कर्ता 'स्थविर रट्ठपाल' तथा द्वितीय संस्कर्ता भिक्षु वैदेह स्थविर कृत 'रसवाहिनी', वरमी राजा वोदोपय (बुद्धप्रिय) के आग्रह से लिखा गया गद्य ग्रंथ 'राजाधिराज विलासिनी' का नाम उल्लेखनीय हैं।
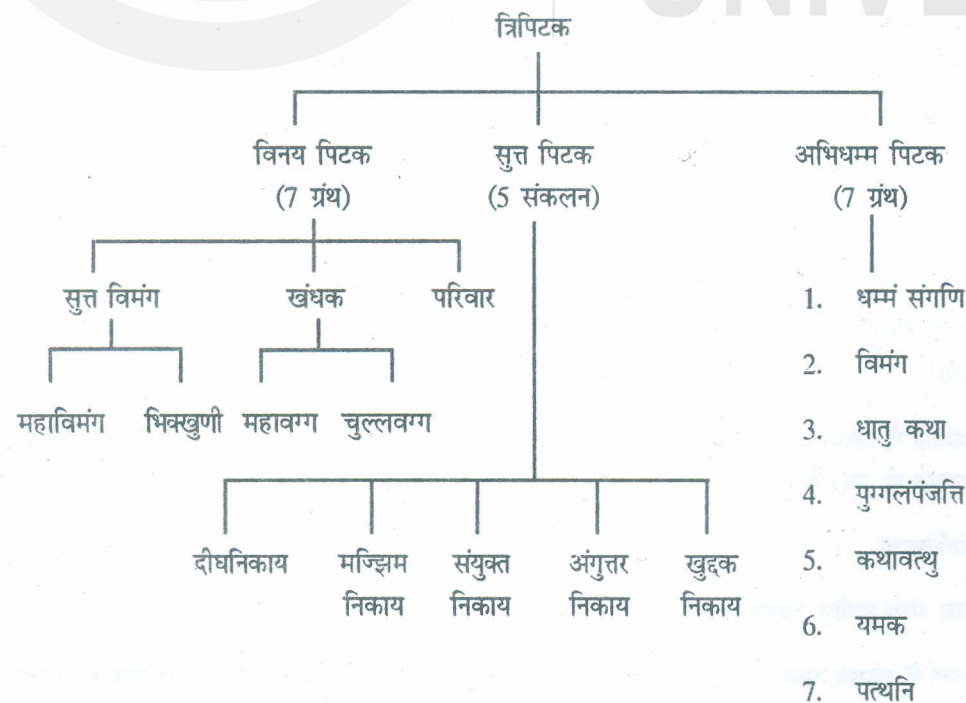
त्रिपिटक

भगवान से बुद्धत्व प्राप्त करने से लेकर परिनिर्वाण प्राप्त करने के बीच उन्होंने जो कुछ भी कहा, उसी

का संग्रह त्रिपिटक में है। त्रिपिटक बौद्ध धर्म का अनुश्रुति ग्रंथ है। 300 ई.पू. मगध में उन्हें संकलित किया गया था। पवित्र बौद्ध ग्रंथ इतनी अधिक भाषाओं में मिलते हैं कि कोई एक व्यक्ति यह नहीं सकता कि वह उन सभी ग्रंथों से परिचित है। ये भाषाएँ पालि, संस्कृत, चीनी, तिब्बती, जापानी, अपभ्रंश और अन्य अनेक मध्य एशियाई भाषाएँ हैं।

27.3.3 भाषा का परिचय

लगभग पाँचवीं शताब्दी ईसवी तक पालि भाषा में किसी भी प्रकार के व्याकरण ग्रंथ की रचना नहीं हुई थी। आचार्य बुद्धघोष ने जितनी भी निप्पत्तियाँ या प्रयोग दिए हैं, उनका आधार पाणिनी व्याकरण ही था। प्रो. बलदेव उपाध्याय ने पालि में उपलब्ध व्याकरण को तीन शाखाओं में विभक्त किया है।

(1) कच्चायन व्याकरण

(2) मोग्गालायन व्याकरण

(3) अग्गवंसकृत 'सद्दनिति'

पालि के ध्वनि समूह का परिचय

कच्चायन के अनुसार पालि में 41 ध्वनियाँ थीं, लेकिन मोग्गलायन इसमें 43 ध्वनियाँ मानते हैं। लेकिन कहा जाता है कि पालि में कुल 47 ध्वनियाँ हैं।

संस्कृत से तुलना करने का ऋ, ऋ, ऐ, औ स्वरों का प्रयोग पालि भाषा में नहीं मिलता है। पालि में दो नए स्वर ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' मिलते हैं। विसर्ग पालि में नहीं मिलता है। श, ष पालि में नहीं मिलते। 'ळ' व्यंजन का प्रयोग पालि में होता है लेकिन लौकिक संस्कृत में इसका प्रयोग नहीं मिलता है। मिथ्या सादृश्य के कारण 'ठठ्' का प्रयोग 'ल्' के स्थान पर भी देखा जा सकता है। स्वतंत्र स्थिति में 'ह्' प्राण ध्वनि व्यंजन है। किंतु य्, र्, ल्, व् या अनुनासिक में संयुक्त होने पर।

पालि में संस्कृत की कई ध्वनियों में परिवर्तन आया। ऋ का उच्चारण खत्म हो गया। जैसे नृत्य > निच्य, वृद्ध > बुड्ढो। श् ष/ के स्थान पर स का उच्चारण परिवर्तन हुआ। विसर्ग का स्थान स्वर।ओ। ने ले लिया। जैसे देव: 'देवो संस्कृत में तीन लिंग और तीन वचन थे इस प्रकार संज्ञा के आठ कारकों में 24 रूप बनते थे। पालि में द्विवचन समाप्त हो गया। इस प्रकार पालि में 16 रूप बनते थे।

स्वर ध्वनि

स्वरों में ह्रस्व 'एँ, ओं' का विकास हुआ। इस प्रकार का विकास बलाघात के कारण पाया गया। ऋ, ॠ, लृ प्राय: समाप्त हो गए। ।ऋ। का पालि में प्राय: 'अ' हुआ।

अ	हृदय	>	हदय	इ	ऋण	इण
अ	कृषि	>	कसि	उ	पृथवी	पुथवी

लृ का उ हो-गया क्लृप्त > कुत्त।

ऐ औ विलुप्त हो गये। 'ऐ' का 'ए' (ऐरावण > एरावण) 'औ' का 'ओ' (गौतम > गोतम) अथवा ऑ हो गया।

व्यंजनों में वैदिक की तरह ही पालि में भी /ळ/ /ळ्ह/ ध्वनियाँ थीं। विसर्ग, जिह्वामूलीय उपध्मानीय भी समाप्त हो गए। वैदिक तथा संस्कृत में श्, ष्, स् तीन थे। पालि में तीनों के स्थान पर 'स्' हो गया।

घोषीकरण

स्वर मध्य अघोष, व्यंजन घोष हो जाता है। जैसे मकर मगर।

पालि में तद्भव शब्द अधिक हैं, तत्सव शब्द कम पाए जाते हैं। परवर्ती साहित्य में कुछ विदेशी शब्द भी हैं।

भाषा रूप

पालि भाषा में संस्कृत से क्रमिक विकास का उल्लेख किया जा सकता है। पालि साहित्य में आद्यंत एक रूप नहीं मिलता है। त्रिपिटक भाषा का प्राचीनतम रूप है। जो भाषा त्रिपिटक के गद्य भाग में मिलती है वहाँ रूप कम हैं और भाषा में एकरूपता मिलती है।

उत्तर कालीन काव्य ग्रंथों में जैसे, दीपवंस, महावंस की भाषा में संस्कृत का काफी प्रभाव है।

27.4 प्राकृत

27.4.1 नामकरण और क्षेत्र

भारतीय आर्य भाषाओं के इतिहास को देखने से पता चलता है कि समस्त आर्य भाषा के विकास का मूल संस्कृत है। संस्कृत भारत की सबसे प्राचीन वेरण्य (क्लासिकल) भाषा है, जिसका मानक रूप हम वेदों, पुराणों और अन्य आर्प ग्रंथों में देखते हैं। संस्कृत कभी जन भाषा के रूप में प्रचलित थी, लेकिन धीरे-धीरे बौद्धों के प्रयास से संस्कृत का एक अन्य भाषा रूप आया, जो पालि भाषा के रूप में विकसित हुआ तथा उसमें बौद्ध साहित्य की रचना हुई। इसी क्रम में भाषा परिवर्तन के साथ प्राकृत भाषा का जन्म हुआ, जिसमें जैन साहित्य लिखा गया। जब संस्कृत लोक व्यवहार की भाषा से अलग होकर शिष्ट जनों की भाषा बन गई तब उसका स्थान प्राकृत ने ले लिया और धीरे-धीरे भारत वर्ष में प्राकृत का साम्राज्य स्थापित रूपों में भारत की लोकमान्य भाषा बनकर जनसामान्य तक पहुँची। इस युग में संस्कृत से भिन्न जितनी भी भाषाएँ थीं उनका सामूहिक रूप प्राकृत भाषा थी जो विकसित हो रही थी।

प्राकृत शब्द 'प्रकृतेरागतम्' व्युत्पत्ति के अनुसार प्रकृति से आने वाली भाषा है। प्रकृति का अर्थ स्वभाव, अशिक्षित जनता, अनपढ़ जीवन यापन करने वाला वह मानव समूह है, जो व्याकरणिक भाषा ज्ञान के अभाव में अपनी बात दूसरे तक पहुँचाता था। रुद्रट ने व्याकरण विहीन बोली जाने वाली भाषा जो सहज और स्वाभाविक रूप से वचन व्यापार है, को प्रकृति माना है और यही प्रकृति 'प्राकृत' के रूप में धीरे-धीरे विकसित होकर आगे बढ़ी अर्थात् प्रकृति जन्य भाषा ही प्राकृत है। कुछ अन्य विद्वानों ने इसकी व्याख्या करते हुए बताया है कि प्राकृत का अर्थ "प्राक् कृतम्" अर्थात् प्राचीन काल में बोली जाने वाली भाषा। कुछ अन्य विद्वानों ने प्राकृत भाषा का व्याकरण लिखकर प्राकृत पद की व्युत्पत्ति करते हुए बताया है कि "प्रकृतेः आगतम्" प्रकृति से आयी हुई भाषा। यहाँ उन विद्वानों ने प्रकृति का आशय संस्कृत माना है। प्राक् कृत का अर्थ है पहले से किया गया।

प्राकृत भाषा लौकिक संस्कृत से उत्पन्न नहीं हुई है क्योंकि प्राकृत के अनेक शब्द और प्रत्ययों का मेल वैदिक भाषा के साथ अधिक देखने को मिलता है। वैदिक साहित्य में भी प्राकृत के अनुरूप अनेक शब्द और प्रत्ययों के प्रयोग पाए जाते हैं। जैसे - प्राकृत में अनेक जगह संस्कृत ऋ कार के स्थान पर 'उकार' पाया जाता है। जैसे ऋतु-उदु, वृंद-वुंद।

इस अर्थ में कुछ विद्वान संस्कृत और आधुनिक भाषा के बीच के सभी रुपों को प्राकृत (Prakrits) माना है और तीन कालों में इसका विभाजन किया है।

1. पूर्वकालीन प्राकृत - (पालि और प्राचीन मागधी) 500 ई.पूर्व से 100 ई. पूर्व तक।
2. मध्यकालीन प्राकृत - (शौरसेनी, मागधी और उसके भेद) 100 से 600 ई तक)।
3. उत्तरकालीन प्राकृत - (अपभ्रंश के रुप) 600 ई से 1100 ई तक।

इस प्रकार 500 ई. पूर्व से लेकर ग्यारहवीं शती के समय की कालक्रम की दृष्टि से भले ही उनमें पूर्वापर संबंध रहा हो, किंतु उनमें कहीं-न-कहीं आपसी संबंध अवश्य है।

परिव्राजकों के इधर से उधर भ्रमण तथा ऋषि-मुनियों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर आवागमन से प्राकृत ने अपना संपूर्ण रूप विकसित किया। उसने अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त की और साहित्य के क्षेत्र में भी उसे पूर्ण रूप से अपनाया गया। इस युग में कथाकारों ने भी अनेक उत्तम कृतियों का निर्माण किया।

प्राकृत भाषा के प्रथम वैयाकरण के रूप में उज्जैन के विक्रमादित्य की राज सभा के प्रमुख विद्वान वररुचि

का नाम आता है। बोलचाल की भाषाएँ ज्यों-ज्यों संस्कृतमय होती गईं, अनेक साहित्यिक शैलियाँ प्रकाश में आने लगीं। प्राकृत जैसे-जैसे जन भाषाओं से अलग हटती गई, वैसे-वैसे उसका साहित्यिक रूप भी संस्कृत ने ले लिया। धीरे-धीरे सभी संकर भाषाओं के साहित्य रूपों को संस्कृत ने अपने में मिला लिया। धीरे-धीरे गुप्त युग में पहुँच कर संस्कृत भाषा ने अपनी पूरी स्थिति कायम कर ली। गुप्त काल के बाद हर्ष का साम्राज्य स्थापित हुआ और मथुरा के आसपास का प्रदेश शौरसेनी नाम से विख्यात हुआ। शौरसेनी को अपभ्रंश के रूप में प्रतिष्ठित होने का अवसर पुनः गुर्जर प्रतिहारों द्वारा किया गया।

शौरसेनी अन्य प्राकृतों की अपेक्षा संस्कृत के अधिक निकट है और महाराष्ट्री भी उसी का एक रूप थी जो गंगा-यमुना दो-आब के विस्तृत भू-भाग की राजभाषा थी। गद्य के लिए शौरसेनी और पद्य के लिए महाराष्ट्री अधिक उपयुक्त थी। ये मध्यकालीन प्राकृतें ज्यों-ज्यों प्रामाणिक संस्कृत के निकट आती गयीं त्यों-त्यों आम बोलचाल की भाषाओं से उनकी दूरी बढ़ती गई।

27.4.2 साहित्य का परिचय

जिस प्रकार प्राचीन भारतीय आर्य भाषा को साधारणतया संस्कृत कहा जाता है, उसी प्रकार मध्य भारतीय आर्य भाषा के लिए प्राकृत शब्द का व्यवहार किया गया है। प्राकृत वैयाकरणों ने जिस भाषा का विवेचन किया है वह लोकभाषा पर आधारित अवश्य थी परंतु वह संस्कृत के आदर्श पर चलकर आगे केवल साहित्यिक रचनाओं की भाषा रह गई थी। इस प्रकार प्राकृतों का प्रयोग संस्कृत नाटककार तेरहवीं शताब्दी तक करते रहे।

शौरसेनी प्राकृत का प्रयोग संस्कृत नाटकों में स्त्री पात्र और विदूषक किया करते थे। इसी प्रकार मागधी मूलतः मगध की भाषा थी। संस्कृत नाटकों में इसका प्रयोग निम्न श्रेणी के पात्र किया करते थे। अर्ध मागधी काशी-कोसल प्रदेश की भाषा थी। जैन आचार्यों ने इस भाषा में शास्त्रों की रचना की। मागधी का प्रयोग संस्कृत नाटकों में किया गया है। मध्य एशिया से प्राप्त अश्वघोष के नाटक 'शारिपुत्र प्रकरण' में मागधी का प्रयोग किया गया है। साहित्यिक प्राकृतों में महाराष्ट्री प्राकृत सर्वाधिक विकसित है। प्राकृत वैयाकरणों ने इसको आदर्श प्राकृत माना है। संस्कृत नाटकों में प्राकृत पद्य रचना महाराष्ट्री प्राकृत में हुई है। महाराष्ट्री प्राकृत में महाकाव्य एवं खंड काव्यों की रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। 'सेतुबंध' तथा 'गउडवहो' काव्य की रचना महाराष्ट्री प्राकृत में हुई है। 'गाथा सत्तसई' की भाषा भी महाराष्ट्री प्राकृत मे है। पैशाची प्राकृत की कोई साहित्यिक रचना सुरक्षित नहीं रह सकी है। कहा जाता है गुणाढ्य की 'वृहत्कथा' (वड्डकहा) मूलतः पैशाची में लिखी गई है लेकिन इसका मूल पाठ लुप्त हो गया है।

27.4.3 भाषा का परिचय

ऊपर यह उल्लेख किया जा चुका है कि प्राकृतों के पाँच रूप हैं। इन सबकी अपनी अलग-अलग व्याकरणिक विशशेताएँ हैं।

स्वर मध्य 'द ध्' (मूल तथा त् थ् के परिवर्तित रूप) सुरक्षित हैं। जैसे आगतः > आवदो, कृतः कुदो (जिससे हिंदी 'किया' बना)

'य' प्रत्यय का प्रतिरूप 'ई अ' हो जाता है, जैसे - गमीअदि (गम्यते)

इसमें 'र' ध्वनि का सर्वथा अभाव है। 'र' के स्थान पर सर्वत्र 'ल्' पाया जाता है। जैसे राजा > लाजा। लेकिन अर्ध मागधी में शौरसेनी एवं मागधी दोनों के लक्षण मिलते हैं। इसमें 'र', 'ल' दोनों ध्वनियाँ विद्यमान हैं। कहीं-कहीं ऊष्म व्यंजन ध्वनि के स्थान पर 'ह' हो गया है। जैसे पाषाण > पाहाण।

"कृ" धातु रूप वैदिक भाषा के समान मिलते हैं। जैसे कृणोति > कुणइ। क्रिया के कर्म वाच्य का 'य' प्रत्यय इज्ज, जैसे पृच्छयते > पुच्छिज्जई। पूर्णकालिक क्रिया का रूप 'ऊण' प्रत्यय के योग से बनता है। जैसे - सं. पृष्टवा > पुच्छिऊण।

सघोष व्यंजनों के स्थान पर समान अघोष व्यंजनों का प्रयोग जैसे नगर > नकर, राजा > राच।

पैशाची में स्वर मध्यग स्पर्श व्यंजनों का लोप नहीं होता है।

पालि और प्राकृत में भेद

पालि भाषा की तुलना में प्राकृत में संज्ञा शब्दों रूप कम हो गए हैं। पालि में 16 रूपों की तुलना में

प्राकृत में 12 रूप रह गए हैं। पालि में ही द्विवचन के आठ रूप समाप्त हो गए थे। पालि भाषा में क्रिया कुल रूपों की संख्या 240 है जबकि प्राकृत भाषा में इन रूपों की संख्या घटकर केवल 72 ही रह गई।

प्राकृतों का विकास (1-500 ई.) पालि के बाद का है। हम कह सकते हैं कि पालि प्राकृत की प्रथम अवस्था का नाम है। भाषा तत्व की दृष्टि से पालि और प्राकृतों में अनेक समानताएँ हैं। पालि और प्राकृत भाषाओं का ध्वनि समूह प्रायः एक-सा ही है। ऋ, ॠ, ऌ ऐ और औ का प्रयोग पालि और प्राकृतों में समान रूप से नहीं पाया जाता। केवल अपभ्रंश में ऋ ध्वनि अवश्य मिलती है। पालि और प्राकृतों में ऋ ध्वनि अ, इ, उ स्वरों में से किसी एक में परिवर्तित हो जाती है। ह्रस्व 'ए' और ह्रस्व 'ओ' का प्रयोग पालि और प्राकृत दोनों में मिलता है। विसर्ग का प्रयोग पालि और प्राकृत दोनों में नहीं मिलता है। श, ष, की जगह मागधी को छोड़कर सभी प्राकृतों और पालि में 'स्' हो जाता है। मूर्धन्य ध्वनि 'ह' पालि और प्राकृत दोनों में पायी जाती है।

27.5 अपभ्रंश

27.5.1 नामकरण

अपभ्रंश भाषा का समय 500 ई. से 1000 ई. तक माना जाता है जबकि 15वीं शताब्दी तक इसमें साहित्य रचना होती रही है। प्रायः विद्वान अपभ्रंश शब्द का अर्थ 'अपभ्रष्ट' या बिगड़ी हुई भाषा मानते हैं। इसके अनेक नाम पाए जाते हैं। अवब्भंस, अवहंस, अवहट्ट, अवहट, अवहत्थ आदि। इसे उस काल में बोलचाल की भाषा माना जाता था। कवि विद्यापति ने इस भाषा की विशेषता बताते हुए कहा है कि 'देसिल बचना सब जन मिट्ठा, ते तैसन जम्पओं अवहट्टा' अर्थात् देश की भाषा सभी लोगों को मीठी लगती है। इसलिए इसे अवहट्ठ भाषा कहा जाता है। इसके अतिरिक्त इसे देशी भाषा, आभीरोक्ति, आभीरी आदि नामों से संबोधित किया जाता रहा है।

अपंभ्रश भाषा का समय 500 ई. से 1000 ई. तक माना जाता है, जबकि 15वीं शताब्दी तक इसमें साहित्य रचना होती रही है। अपभ्रंश शब्द का प्राचीनतम प्रामाणिक प्रयोग पतंजलि (150 ई. पू. लगभग) के महाभाष्य में मिलता है। भर्तृहरि (5वीं सदी) के 'वाक्यपदीय' (काण्ड 1, कारिका 148का वार्तिक) से यह ज्ञात होता है कि 'व्याडि' नामक संग्रहकार ने भी अपभ्रंश शब्द का प्रयोग किया था, जो महाभाष्यकार पतंजलि से पहले हुए थे। 'भरत' (दूसरी सदी) ने अपने नाट्यशास्त्र में अपभ्रंश के लिए इसी अर्थ में 'विभ्रष्ट' शब्द का प्रयोग किया था। अपभ्रंश मध्यकालीन आर्य भाषाओं और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं (हिंदी बंगला, मराठी, गुजराती आदि) के बीच की कड़ी है।

समय

ऊपर कहा जा चुका है कि अपभ्रंश का काल मोटे तौर से 500 ई. से 1000 तक माना गया है, लेकिन लोगों ने इसका काल 600 ई से 1100 ई. तक माना है। कुछ लोगों ने इसका समय 7वीं सदी से 13वीं सदी तक माना है। डॉ. सुकुमार सेन ने अपनी पुस्तक (A Comparative Grammar of Middle Indo Aryan) में यह माना है कि अपभ्रंश का काल 1 ई. से 600 ई. तक है। अपभ्रंश के प्रयोग का सबसे प्राचीन उदाहरण 'भरत' के नाट्यशास्त्र (300 ई.) में मिलते हैं। भरत ने 'आभीरोक्ति' को 'उकार' बहुला बताया है और उसका उदाहरण इस प्रकार दिया है -'मोरुल्लउ', 'नच्चन्तउ'।

पहली और दूसरी सदी के निकट कोई अपभ्रंश रचना हमें नहीं मिलती है। उपर्युक्त सभी तिथियों को ध्यान में रखते हुए अपभ्रंश का जन्म 500 ई. के आस-पास मान सकते हैं। अपभ्रंश के अंतिम समय को हम 1000 ई. के आस-पास मान सकते हैं। हम सभी जानते हैं कि भाषा जन्म से ही साहित्य की भाषा नहीं बन जाती है, उसको साहित्य की भाषा बनने में सैकड़ों साल लग जाते हैं, इसलिए यह कहना उचित नहीं है कि अपभ्रंश अपने आरंभ से ही साहित्य की भाषा रही होगी, उसको विकसित होने में काफी समय लगा होगा इसलिए उसका समय 500 ई. के आस-पास मानना उचित ही होगा। इस प्रकार हम अपभ्रंश का समय 500 ई. से 1000 ई. या 600 ई. से 1200ई. तक मान सकते हैं।

क्षेत्र विस्तार

भरत ने अपने नाटयशास्त्र में 'उ' कार बहुला भाषा का प्रयोग सिंधु सौवीर और इन क्षेत्रों के आश्रित देशों

के लोगों के लिए माना है। इससे यह पता चलता है कि भरत के समय तक उस समय के प्रयोग में आने वाली भाषा में अपभ्रंश की विशेषताएँ भारत के उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों में प्रकट हुईं। ईसा की दसवीं शताब्दी में राजशेखर ने अपनी पुस्तक 'काव्य मीमांसा' में अपभ्रंश का विस्तार क्षेत्र संपूर्ण मरुभूमि बताया है अर्थात् यह मरुभूमि अवश्य ही राजस्थान का क्षेत्र रहा होगा। एल.एम.दे अपभ्रंश का स्थान 'मादानक' भागलपुर से 9 मील दक्षिण में स्थित 'मदरिया' स्थान मानते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजशेखर के समय तक अपभ्रंश का विस्तार क्षेत्र 'राजपूताना' और पंजाब रहा होगा। अपभ्रंश में लिखित जो साहित्य आज हमें मिलता है उसका रचना स्थान राजस्थान, गुजरात, पश्चिमोत्तर भारत, बुंदेलखंड, बंगाल और सुदूर दक्षिण तक प्रतीत होता हैं। इन स्थानों को देखने से प्रतीत होता है कि ग्यारहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश का प्रचार-प्रसार समस्त उत्तर भारत और दक्षिण में हुआ था। अपभ्रंश इस विस्तृत क्षेत्र की जन भाषा थी, इसलिए इन प्रदेशों की भाषाओं पर अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

27.5.1 अपभ्रंश साहित्य

अपभ्रंश साहित्य का विकास मालवा, गुजरात तथा राजस्थान में हुआ। अत: इस प्रदेश की अपभ्रंश तत्कालीन साहित्यिक भाषा बन गई और बंगाल तथा दक्षिण तक में इस भाषा में साहित्य रचना हुई। यही कारण है कि अपभ्रंश साहित्य में एक ही प्रकार की परिनिष्ठित अपभ्रंश भाषा मिलती है। अपभ्रंश के प्रचार-प्रसार में 'आभीर' जाति का संबंध बहुत गहरा है इसे सिंधु के पश्चिम में निवास करने वाली जाती कहा गया है। गूर्जरों का संबंध आभीर जाती से जोड़ा गया है। इन जातियों के प्रसार के साथ-साथ अपभ्रंश भाषा का भी प्रचार-प्रसार बढ़ा और मध्य भारतीय आर्य भाषा प्राकृत की स्थिति को छोड़कर अपभ्रंश की ओर बढ़ी। अपभ्रंश के लिए 'आभीरी' भी एक नाम है।

अपभ्रंश का जो साहित्य हमें प्राप्त होता है उसमें भाषागत भेद बहुत कम है। नागरी प्रचारिणी पत्रिका में 'पुरानी हिंदी' शीर्षक लेख में स्वर्गीय पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने अपभ्रंश को 'पुरानी हिंदी' नाम दिया है। रामचंद्र शुक्त ने प्राकृत की अंतिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिंदी साहित्य का विकास माना हैं। राहुल सांकृत्यायन ने हिंदी काव्यधारा (1954) में अपभ्रंश काव्य का संग्रह प्रकाशित करते हुए उसकी भाषा को हिंदी का प्राचीन रूप कहा है। इस प्रकार हिंदी साहित्य की परंपरा प्राकृत की अंतिम अपभ्रंश अवस्था से ही मानी जाती है। वास्तव में विक्रम की आठवीं, नवीं और दसवीं शताब्दियों में अपभ्रंश साहित्य का उत्कर्ष युग माना जाता है तथा पुष्पदंत चतुर्मुख तथा बौद्ध सिद्ध इसी युग के प्रतिभाशाली कवि माने जाते थे। साहित्यिक अपभ्रंश में अधिक सहायक है। हिंदी साहित्य के सभी विद्वान इस मत को स्वीकार करते है, कि पुरानी हिंदी का संबंध अपभ्रंश के साथ बहुत घनिष्ठ है। हम यह अध्ययन कर चुके हैं कि विभिन्न अपभ्रंशों से ही आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म हुआ। अपभ्रंश की सभी रचनाएँ हिंदी भाषी प्रदेश के मध्य भाग के चारों ओर निर्मित हुईं।
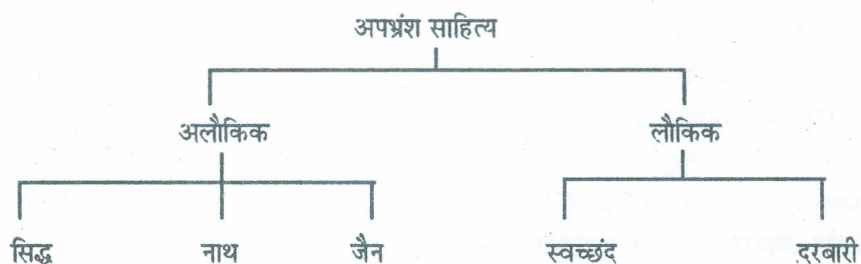
27.4.4 अपभ्रंश और हिंदी साहित्य का संबंध

सिद्धों की कृतियाँ मागधी अपभ्रंश तथा जैन कवियों की रचनाएँ नागर अपभ्रंश के अंतर्गत विभाजित की जा सकती हैं। आधुनिक लोक भाषाओं से पहले सम्पूर्ण उत्तरी भारत गुजरात और महाराष्ट्र में साहित्य रचना के लिए अपभ्रंश भाषा को ही अपनाया जा रहा है। हिंदी का संत काव्य अपभ्रंश कालीन सिद्ध और नाथ पंथी साहित्यकारों की विचारधारा का परवर्ती विकसित रूप है। 'रास', 'रासक' और 'रासो' अपभ्रंश और गूर्जर हिंदी के लोकप्रिय काव्य हैं। रास परम्परा की 18 और रासो और रासक परंपरा की 24 काव्य कृतियाँ इस समय उपलब्ध हैं। रास कोमल भावनाओं के काव्य हैं, जबकि रासो अथवा रासक में जिन घटनाक्रमों का आधार युद्ध है, वहाँ भावनाएँ कठोर हो गई हैं। माणक-रासो जैसा विनोद प्रधान काव्य तथा 'संदेश रासक' जैसा विरह गाथा प्रधान काव्य भी इसी परंपरा की कृतियाँ हैं। पन्द्रहवीं शती के आस-पास

भाषा का एक नया स्वरूप जन्म ले रहा था और पुरानी परंपराएँ नए प्रयोगों के साथ प्रयुक्त हो रही थीं। अपभ्रंश कालीन कवियों ने साहित्य को एक नया स्वरूप प्रदान किया। सोलहवीं शताब्दी के हिंदी साहित्य में दो धाराओं के संगम ने भक्ति काव्य में पद साहित्य का मार्मिक स्वरूप ग्रहण कर लिया। आधुनिक हिंदी साहित्य में अपभ्रंश भाषा और उसकी काव्य चेतना ही नहीं बल्कि उस समय की जनचेतना और जनजीवन भी विद्यमान है।

अपभ्रंश की अनुलेखन विधि पूर्णत: प्राकृत एवं संस्कृत की अनुगामिनी रही है। ऐ औ (ह्रस्व) जैसी नयी ध्वनियों के लिए नए चिन्ह नहीं बनाए गए। उस समय लेखक ह्रस्व ऐ और ध्वनियों के लिए 'इ उ' का व्यवहार करते थे। इसी प्रकार 'अ' के विकृत एवं संवृत भेदों की भिन्नता को दिखाने के लिए किसी भी प्रकार का नया चिन्ह प्रयोग में नहीं लाया गया। अनेक आधुनिक आर्य भाषाओं (बंगला, अवधी) में 'अ' का उच्चारण भिन्न रहा होगा लेकिन लिखित साहित्य में इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता है। इसी प्रकार लुप्त मध्य व्यंजन के स्थान पर कहीं-कहीं 'अ' मिलता है, लेकिन कहीं-कहीं 'य' श्रुति का समावेश किया गया।

अपभ्रंश के प्रमुख रूप

अपभ्रंश के कितने रूप हैं, यह प्रश्न बड़ा ही विवादास्पद रहा है। हम जानते हैं कि प्राकृत भाषा के कई रूप थे - शौरसेनी, पैशाची, अर्धमागधी, मागधी, महाराष्ट्री आदि। उम्मीद यों की जानी चाहिए कि शौरसेनी प्राकृत से शौरसेनी अपभंश और मागधी प्राकृत से मागधी अपभ्रंश बने। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। मार्कंडेय ने प्राकृत सर्वस्व में अपभ्रंश के तीन ही भेद गिनाये हैं - नागर अपभ्रंश वर्गमान राजस्थान और गुजरात के क्षेत्र में प्रभावित थी और यही प्रमुख भाषा रूप थी। हेमचंद्र ने अपना व्याकरण इसी रूप को आधार बनाकर लिखा। ब्राचड अपभ्रंश का प्रयोग पंजाब-सिंध में और उपनागर अपभ्रंश इन तीनों के बीच में। फिर मगध तथा पूर्वी क्षेत्रों में कौन-सा बोली रूप था? यह तो नहीं हो सकता है कि देश के पूर्व में कोई अप्रभ्रंश नहीं थी और सीधे प्राकृत से आधुनिक भाषाओं का विकास हुआ है। अपभ्रंश प्राकृत और आधुनिक भाषाओं के बीच की कड़ी है और वह विलुप्त नहीं हो सकी। यही कहा जा सकता है कि पश्चिम की अपभ्रंश बोलियाँ/रूप साहित्यिक महत्व के कारण प्रस्फुटित हुए, लेकिन उस समय साहित्य के अभाव के कारण पूर्व के रूप प्रच्छन्न रहे।

अपभ्रंश के विकास में उसके प्रमुख रूपों की चर्चा करना आवश्यक है। इस भाषा के प्रमुख रूप इस प्रकार हैं।

शौरसेनी प्राकृत

शौरसेनी प्राकृत से विकसित यह अपभ्रंश उत्तर में पहाड़ी बोलियों के क्षेत्र, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश के पश्चिमी भाग, पूर्वी पंजाब, राजस्थान और गुजरात में बोली जाती थी। इसे पश्चिमी अपभ्रंश या नागर अपभ्रंश भी कहा जाता है। पाहुण दोहा, उपदेश तरंगिणी, सनत्कुमार चरिअ इसकी साहित्यिक कृतियाँ हैं। इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं क्, ख्, त्, थ् क्रमश: ग्, घ्, द्, ध् हो जाते हैं। जैसे नाक > णाग, सुख > सुघु, पतितु > पदिदु।

उपनागर

इसके अंतर्गत वैदर्भी, कैकेयी, गौडी, पांडय तथा सिंहली का उल्लेख मिलता है। यहाँ कैकेयी में प्रतिध्वन्यात्मक शब्द, वैदर्भी में - उल्ल प्रत्यय युक्त शब्दों के आधिक्य का उल्लेख है।

दक्षिणी अपभ्रंश

दक्षिणी अपभ्रंश का क्षेत्र महाराष्ट्र माना है। पुष्पदंत ने इसमें साहित्य रचना की है। इनका नाम महापुराण तथा कन कामर करकंडचरिउ आदि है। इसकी कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं। अन्य अपभ्रंशों में प का ख् या क्ख् हो जाता है, लेकिन इसमें प् का छ् होता है।

आकारांत पुल्लिंग एकवचन तृतीया पश्चिमी में - एँ होता है किंतु इसमें एण हो जाता है। वर्तमान उत्तम पुरुष एकवचन में पश्चिमी में उँ होता है, जबकि इसमें - मि होता है। अन्य पुरुष बहुवचन में - न्ति (पश्चिमी में) - हि हो जाता है।

पूर्वी अपभ्रंश

इसका प्रमुख क्षेत्र बंगाल, बिहार, आसाम, उड़ीसा था। सरहपा और कण्डपा के दोहे की रचना इसी भाषा में हुई हैं।

व्याकरणिक परिचय

अपभंश का व्याकरणिक परिचय इस प्रकार है:

इस युग में संस्कृत तथा प्राकृत से प्राप्त अन्त्य स्वरों का ह्रास हुआ।

उपान्त्य स्वरों की मात्रा सुरक्षित रही। आद्य अक्षरों में क्षतिपूरक दीर्घीकरण से द्वित्व व्यंजन के स्थान पर एक व्यंजन का प्रयोग हुआ।

इसमें समीपवर्ती स्वरों का संकोच हुआ।

स्वरों का प्रयोग अनुनासिक होता था तथा संगीतात्मक स्वराघात समाप्त हो चुका था इसमें बलात्मक स्वराघात विकसित हो चुका था।

हम जानते हैं कि अपभ्रंश उकार बहुला भाषा थी, जिसे, हम 'ललित विस्तार' तथा प्राकृत 'धम्मपद' में देख सकते हैं। अपभ्रंश में इसकी बहुलता मिलती है, जिसका स्वरूप हमें 'ब्रजभाषा एवं अवधी' में मिलता है। जैसे अंगु, मूलु, पियासु आदि शब्दों में देखा जा सकता है।

स्वर ध्वनियाँ

ह्रस्व – अ, इ, उ, ऐ, औ

दीर्घ – आ ई ऊ ए ओ।

स्म का म्ह (अस्मै – अम्ह) य का ज (युगल का जुगल) ड, द, न र, के स्थान पर 'ल' (प्रदीप्त – पलित्त आदि) रूप में ध्वनि विकास की बहुत सी प्रकृतियाँ मिलती हैं।

(विशेषत: परवर्ती अपभ्रंश में) समीकरण के कारण उत्पन्न द्वित्वता में एक व्यंजन बच गया और पूर्ववर्ती स्वर में क्षतिपूरक दीर्घीकरण हो गया है। (सं. तस्य, प्रा. तस्स अप. तासु, कस्य > कस्स > कासु, कर्म > कम्म > कामु)

अपभ्रंश में स्वर के आदि अक्षर के स्वर को सुरक्षित रखने की प्रवृत्ति पायी जाती है क्योंकि स्वराघात प्राय: आदि अक्षर पर ही पड़ता था। परंतु आदि अक्षर को स्वरों में मात्रिक परिवर्तन अथवा लोप के उदाहरण भी मिलते हैं गहिर < गंभीर, ढक्क < ढक्का, दँक तलाउ < तड़ाग, गाम < ग्राम झाणी < ध्यान इत्यदि में आदि स्वर सुरक्षित हैं। परंतु कासु < कस्सु < कस्य, तासु < तस्य इत्यादि में मात्रि परिवर्तन है।

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के व्यंजनांत प्रातिपदिक पालि के समय से ही लुप्त होने लगे थे। अपभ्रंश ने अंतिम व्यंजन का लोप कर दिया यथा, आत्मन् > अप्प जगत् > जग, मनस् > मणा। कुछ व्यंजनांत रूप भी अपभ्रंश में मिल जाते हैं राणों < राजान। ऋकारांत प्रातिपदियों के 'ऋ' को अपभ्रंश ने 'अर' अथवा 'इ' में परिवर्तित कर दिया। जैसे पितृ > पियर, भ्रातृ > भाय, भाई। भर्तृ > भत्तार।

अवधी और ब्रज में प्राय: ये रूप ज्यों के त्यों चलते रहे।

कृदंत तद्भव

वर्तमान कालिक कृदंत – अपभ्रंश में संस्कृत कृत् प्रत्यय वाले रूप 'अंत' लगाकर बनाए जाते थे जैसे, चलंत 'चलता'। इस प्रकार के वर्तमान कालिक कृदंत कभी किसी सहायक क्रिया की सहायता से तथा अकेले ही सामान्य वर्तमान काल का संकेत देते हैं। जैसे 'होसइ करतम अच्छ। यह स्थिति परवर्ती अपभ्रंश से होती हुई खड़ी बोली, अवधी और ब्रज में पहुँची।

भूतकालिक कृदंत

अपभ्रंश भाषा में प्राय: निष्ठा के ही रूप प्रचलित थे तिड़ंत रूप नहीं। यही परंपरा हिंदी बोलियों में भी मिलती है। जैसे, 'गयउ सु केहरि'।

निर्मित

अठभा लग्गा डुंगरहि पहिउ रडन्तउ जाइ।

भूतकालिक कृदंत: जइ भग्गा घर एंतु। (=भागा)

क्रिया विशेषण

कुछ विशेषणों को छोड़कर अपभ्रंश के अधिकांश क्रिया विशेषण संस्कृत के तद्भव हैं। कुछ क्रिया विशेषण इस प्रकार हैं।

काल वाचक

अज्जु-अजु, स्थान वाचक - जहिं (यस्मिन्)(उद्य) जहं, जहाँ।

रीति वाचक

एउँ, इउँ। अन्य अवस (अवश्यम्) - अवस अवसि (अवधि)।

रूपात्मक विकास

संस्कृत संज्ञा प्राय: तीन अंशों से मिलकर बनती है। धातु, प्रत्यय तथा कारक चिह्न। धातु और प्रत्यय से मूल शब्द बनता है। फिर उसमें कारक चिह्न आदि बनते हैं। हिंदी में विभक्ति का विचार संज्ञा, सर्वनाम, और क्रिया में मुख्यत: होता है। अत: हम अपभ्रंश और हिंदी का तुलनात्मक रूप देकर इनके संबंधों को समझने का प्रयास करेंगे।

अपभ्रंश से लेकर आधुनिक हिंदी तक अनेक कारकों में परसर्ग सहित अथवा परसर्ग रहित बिना विभक्ति के शब्दों का प्रयोग होता रहा है।

27.6 सारांश

इस इकाई में प्राचीन भारतीय भाषाओं के विषय में विस्तृत जानकारी दी गई है। संस्कृत विश्व की उन प्राचीन भाषाओं में से एक है, जिसमें वेद, उपनिषद तथा वेदांग ग्रंथों की रचना की गई। संस्कृत में वैदिक और लौकिक ये दो धाराएँ प्रस्फुटित हुईं, जिसने विश्व को धर्म, संस्कृति, दर्शन, एवं सभ्यता का मार्ग दिखाया। लौकिक संस्कृत में उन सांहित्यिक ग्रंथों की रचना हुई, जो हमारे लिए प्रेरणा के स्रोत बने। संस्कृत में उन साहित्यिक ग्रंथों की रचना हुईं, जो हमारे लिए प्रेरणा के स्रोत बने। संस्कृत व्याकरण सूत्र रूप में इतना समृद्ध बना कि आज भी वैयाकरण उसका लोहा मानते हैं। संस्कृत का 'पाणिनि व्याकरण' सूत्र रूप में सभी विशेषताओं से पूर्ण है। संस्कृत भाषा को समझने के लिए वह एक ऐसी कुंजी है, जिससे सभी व्याकरणिक समस्याओं का समाधान हो जाता है।

संस्कृत की समृद्ध परंपरा का विकास जन भाषा के रूप में हुआ और जन भाषा का जो स्वरूप हमारे सामने आया, वह पालि भाषा थी। इस भाषा का विकास बौद्ध प्रचार-प्रसार के कारण हुआ। इस भाषा में विकास बौद्ध प्रचार-प्रसार के कारण हुआ। इस भाषा में भगवान बुद्ध के उपदेशों के संकलन के साथ-साथ अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथ भी मिलते हैं, जिनकी रचना पालि भाषा में हुई है। मानव जीवन की व्यापक एवं गहन अनुभूतियों का चित्रण हमें त्रिपिटिकों में मिलता है, जिसे उनके शिष्यों ने लिपिबद्ध किया, क्योंकि भगवान तथागत के उपदेश मौखिक हुआ करते थे। इस काल के प्रमुख रचनाकार अश्वघोष दिङ्नाग आदि थे।

पालि भाषा में आए हुए स्वरों में बलाघात पाया जाता है, जबकि व्यजंनों में वैदिक ध्वनियों के करीब है। पालि में तद्भव शब्दों की बहुलता है, जब कि तत्सम् शब्द कम पाए गए हैं। इस भाषा में एकरूपता मिलती है।

संस्कृत का जनभाषा के रूप में विकास के साथ बौद्धों के आगमन से पालि भाषा का जन्म हुआ। पालि जब लोक व्यवहार की भाषा से अलग हो गई, तब जन सामान्य की एक अलग भाषा प्रयोग में आयी। इस

भाषा को प्राकृत भाषा नाम दिया गया। इसमें जैन साहित्य की रचना की गई। इसके प्रथम वैयाकरण विक्रमादित्य की राजसभा के प्रमुख विद्वान आचार्य वररुचि थे। चूँकि पाँच प्राकृत भाषाएँ थीं, इसलिए इनकी अपनी अलग-अलग व्याकरणिक विशेषताएँ भी हैं। इसमें सघोष व्यंजनों के स्थान पर अघोष व्यंजनों का प्रयोग मिलता हैं। 'कृत' धातु रूप वैदिक भाषा के समान है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषा का प्राचीन रूप अपभ्रंश है, जो प्राकृत भाषा के अंतिम काल में प्रकाश में आया। अपभ्रंश साहित्य का विकास आभीर जाति से माना जाता है, और यह भी माना जाता है कि इसी घुमन्तू जाति ने इस भाषा का प्रचार किया। अपभ्रंश में साहित्य की रचना हिंदी भाषी प्रदेश के मध्य भाग के चारों ओर पायी जाती हैं। इस साहित्य के सबसे उत्कृष्ट विद्वान पुष्प दंत माने जाते हैं। अपभ्रंश साहित्य के दो रूप माने गए, जिसमें लौकिक और अलौकिक रूप हमें मिलते हैं। अपभ्रंश के व्याकरण में संस्कृत तथा प्राकृत से प्राप्त अन्त्य स्वरों का ह्रास हुआ, तथा उपान्त स्वरों की मात्रा सुरक्षित रही। अपभ्रंश में प्राकृत की सभी ध्वनियाँ मौजूद हैं।

अपभ्रंश का अंतिम काल हिंदी भाषा और साहित्य का विकास काल है। इसे हम हिंदी भाषा और साहित्य का आदि काल मान सकते हैं। अगली इकाई में आप भारतीय आर्य भाषाओं के विकास काल के विषय में अध्ययन करेंगे।

27.7 अभ्यास प्रश्न

1. संस्कृत साहित्य और भाषा का परिचत दीजिए।
2. पालि भाषा की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है, सिद्ध कीजिए।
3. अपभ्रंश भाषा और साहित्य हिंदी साहित्य के आदिकाल के सूचक है, प्रमाणित कीजिए।
4. संस्कृत से हिंदी तक भाषा के सरलीकरण की प्रक्रिया को समझाइए।

इकाई 28 आधुनिक आर्य भाषाएँ और हिंदी

इकाई की रूपरेखा

28.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- आधुनिक आर्य-भाषाओं का विकास और उसके क्षेत्र का निर्धारण कर सकेंगे:
- आधुनिक आर्य-भाषाओं की विशेषताएँ बता सकेंगे और उसका वर्गीकरण कर सकेंगे;
- हिंदी की बोलियों का परिचय दे सकेंगे तथा हिंदी क्षेत्र को पहचान सकेंगे;
- बोलियों और भाषाओं की विशेषताएँ बता सकेंगे ।

28.2 आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास, क्षेत्र और परिचय

अपभ्रंश काल की समाप्ति के बाद और आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं के बीच का काल भारतीय आर्य-भापा के विकास क्रम में बहुत अस्पष्ट काल है । कथ्य भाषा के रूप में अपभ्रंश कब तक बनी रही और कब आधुनिक आर्य-भाषाएँ अपनी विभिन्न विशेषताओं से पूर्ण होकर अस्तित्व में आयीं, इसका प्रमाण नहीं मिलता है। कथ्य भाषा के रूप में अपभ्रंश की स्थिति न होने पर भी बहुत समय तक अपभ्रंश में साहित्य रचना होती रही और आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की प्राचीन रचनाओं में भी अपभ्रंश के विविध रूपों का व्यवहार होता रहा। आचार्य हेमचंद्र (बारहवीं शताब्दी में) का अपभ्रंश व्याकरण लिखना यह प्रमाणित करता है कि उनके समय तक अपभ्रंश अपने चरमोत्कर्प पर थी। उन्होंने अपने महत्वपूर्ण ग्रंथ 'काव्यानुभाश' में ग्रम्यापभ्रंश का उल्लेख किया है।

आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं में ईसा की सोलहवीं शताब्दी में साहित्यिक रचनाएँ मिलने लगती हैं। उस समय की रचनाओं में भाषा का जो स्वरूप मिलता है, उसमें अपभ्रंश की विशेषताएँ नहीं मिलतीं, बल्कि आधुनिक आर्य-भाषा की विशेषताएँ मिलने लगती हैं। इस दृष्टि से यदि हम विचार करें तो हम पाते हैं कि आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं का स्वरूप प्राप्त करने का समय इस रचनाओं से एक शताब्दी पूर्व माना जा सकता है। इस प्रकार पंद्रहवीं शती तक भारतीय आर्य-भाषा आधुनिक काल में पदार्पण कर चुकी थी और आचार्य हेमचंद्र के पश्चात तेरहवीं शती के प्रारंभ से आधुनिक आर्य-भाषाओं के अभ्युदय के समय पन्द्रहवीं शती के पूर्व तक का काल संक्रमण काल माना जा सकता है, जिसमें भारतीय आर्य-भाषा धीरे-धीरे अपभ्रंश की स्थिति को छोड़कर आधुनिक काल की विशेषताओं से युक्त होती जा रही थीं।

आधुनिक आर्य-भाषाओं में सिंधी, गुजराती, लहँदा, पंजाबी, मराठी, उड़िया, बंगाली, असमिया, हिंदी (पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी) प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त कश्मीरी भी भारत की एक महत्वपूर्ण भाषा है, जो मूलतः भारत-ईरानी की दरद भाषा वर्ग में आती है। उर्दू वस्तुतः भाषावैज्ञानिक स्तर पर हिंदी की ही अरबी-फारसी से प्रभावित एक शैली है। राजस्थानी पहाड़ी तथा बिहारी को विद्वानों ने अलग रखा है, किंतु ये हिंदी प्रदेश में आती हैं। वस्तुतः भाषा के आकृतिमूलक या पारिवारिक वर्गीकरण से सांस्कृतिक वर्गीकरण को कम महत्वपूर्ण नहीं माना जा सकता और इस दृष्टि से राजस्थानी, पहाड़ी, बिहारी हिंदी के सांस्कृतिक वर्ग में आती हैं। भारत के बाहर बोली जाने वाली आधुनिक आर्य-भाषाओं में नेपाली, सिंहली तथा जिप्सी भी उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं का क्षेत्र संपूर्ण उत्तर भारत है। इसमें बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान है। इसके अतिरिक्त पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश भी इसके अंतर्गत आते हैं। गुजरात, महाराष्ट्र भी इसके प्रमुख क्षेत्र हैं। इन प्रदेशों की भाषाओं का परिचय नीचे दिया जा रहा है।

भाषा सर्वे के आधार पर मुख्य आधुनिक आर्य-भाषाओं का परिचय इस प्रकार है:

1. **सिंधी :** सिंध प्रांत में सिंधु नदी के किनारों पर सिंधी भाषा बोली जाती है। इस भाषा को बोलने वाले मुस्लिम लोगों की संख्या सर्वाधिक है, इसीलिए इसमें फ़ारसी शब्दों का प्रयोग अधिक पाया जाता है। सिंधी भाषा फारसी लिपि का एक विकृत रूप है। यह कभी-कभी गुरुमुखी में भी लिखी जाती हैं। सिंधी भाषा की पाँच मुख्य बोलियाँ है जिनमें 'विचोली', 'ब्राचड' 'कच्छी' प्रमुख हैं। इस भाषा में साहित्य रचना कम है।

2. **लहंदा:** इसे पश्चिमी पंजाब की भाषा कहा जाता है जो इस समय पाकिस्तान में है। लहंदा और पंजाबी आपस में इतनी सन्निकट हैं कि दोनों में भेद करना काफ़ी कठिन कार्य है। लहंदा पर दरद और पिशाच भाषाओं का प्रभाव बहुत अधिक है। इसी प्रदेश में 'कैकेय' देश पड़ता है, जहाँ पैशाची प्राकृत और कैकेय अपभ्रंश बोली जाती थी। लहंदा के अन्य नाम पश्चिमी पंजाबी, जटकी, उच्चा तथा हिंदकी आदि हैं। यह पंजाबी से बहुत भिन्न है। इसकी अपनी लिपि 'लंडा' है, लेकिन आजकल यह फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है। यह कश्मीर में प्रचलित शारदा लिपि की उपशाखा मानी जाती है।

3. **कश्मीरी :** प्राचीन काल से ही कश्मीरी पर संस्कृत का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है, क्योंकि कश्मीर के सारस्वत ब्राह्मणों ने संस्कृत को अध्ययन-अध्यापन की भाषा बनाया है। इसके इतिहास को देखने से प्रतीत होता है कि 1,000 ई. के पहले से ही कश्मीरी में साहित्य रचना होने लगी थी, लेकिन प्राचीन कश्मीरी साहित्य का अधिकांश अंश विलुप्त हो गया। कश्मीरी भाषा के प्रसिद्ध साहित्यिक भक्त कवि 'लल्लद्य' हैं जिनका समय 14वीं शताब्दी माना जाता है। पहले कश्मीर में ब्राह्मी-लिपि से उत्पन्न शारदा लिपि प्रचलित थी, किंतु आज वहाँ फ़ारसी लिपि का प्रचार है। संविधान की अष्टम सूची की अठारह स्वीकृत भाषाओं में कश्मीरी को स्थान मिला है।

4. **पंजाबी :** पंजाबी भाषा का हिंदी के पश्चिम उत्तर भाग में हैं। यह पाकिस्तान के पश्चिमी पंजाब के पूर्वी भाग तथा पूर्वी पंजाब के पश्चिमी भाग में बोली जाती है। पूर्वी पंजाब के पूर्वी भाग में हिंदी का विस्तृत क्षेत्र है। पंजाबी पर दरद अथवा पिशाच भाषाओं का कुछ प्रभाव शेष है। पंजाबी का शुद्ध रूप अमृतसर के आस-पास बोला जाता है। इसकी उत्पत्ति 'टक्क' अपभ्रंश से हुई है, किंतु इसपर शौरसेनी का पर्याप्त प्रभाव है। पूर्वी पंजाबी की कई उप-भाषाएँ हैं, जिनमें डोगरी प्रसिद्ध है। यह जम्मू तथा कांगड़ा में बोली जाती है। पंजाबी की अपनी लिपि 'लंडा' है। सिक्खों के गुरु अंगद (1538-52 ई.) ने देवनागरी की सहायता से इस लिपि में सुधार किया था, जिसके कारण लंडा का यह नया रूप 'गुरुमुखी' कहलाया। पंजाबी में 16वीं शती में रचित सिक्ख गुरुओं के पद मिलते हैं। इधर पंजाब सरकार ने गुरुमुखी तथा नागरी हिंदी को प्रदेश की भाषा स्वीकार किया है। इस भाषा में साहित्य नया है। सिक्खों के ग्रंथसाहब की भाषा प्रायः मध्यकालीन हिंदी है यद्यपि वह गुरुमुखी अक्षरों में लिखी गयी है।

5. **गुजराती :** गुजराती भाषा गुजरात, बड़ौदा और निकटवर्ती अन्य देशी राज्यों में बोली जाती है। गुजराती पर गूजर जाति का अत्यधिक प्रभाव है। गुजराती में बोलियों का स्पष्ट भेद अधिक नहीं है। भाषावैज्ञानिकों के अनुसार इसकी उत्पत्ति प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी से हुई है, जिसके उदाहरण हमें

12वीं और 13वीं शताब्दी से लेकर 15वीं शताब्दी तक के जैन लेखकों की कृतियों में मिलते हैं। गुजराती साहित्य बहुत विस्तृत नहीं हैं, लेकिन जो भी हमें मिलता है, वह काफी अच्छी अवस्था में है। गुजराती के आदि कवि नरसी मेहता हैं, जिनका आदर आज भी बहुत होता है। प्रसिद्ध वैयाकरण हेमचंद्र भी गुजराती थे, जो 12वीं शती में हुए थे। इन्होंने अपने व्याकरण में गुजरात की नागर अपभ्रंश का वर्णन किया है। आजकल गुजराती कैथी से मिलती-जुलती लिपि में लिखी जाती है, जो देवनागरी के बहुत निकट है। गुजराती में मीरा तथा अन्य कृष्ण भक्त कवियों की कृतियाँ उपलब्ध हैं। आधुनिक गुजराती में महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा लिखी हैं और श्री के.एम. मुंशी तथा उनकी पत्नी लीलावती मुंशी ने अनेक पुस्तकें लिखी हैं।

6. **राजस्थानी :** पंजाबी के ठीक दक्षिण में राजस्थानी अथवा राजस्थान की उप-भाषाओं का वर्ग है। यह मध्यदेश की प्राचीन भाषा का ही पश्चिमी विकसित रूप है। इसके विकास की अंतिम सीढ़ी गुजराती है। राजस्थानी भाषा पर मध्य देश की शौरसेनी की पूरी छाप है। राजस्थानी वर्ग के अंतर्गत मुख्य चार उप-भाषाएँ हैं- मेवाती, जयपुरी, मारवाड़ी और मालवी। राजस्थानी उप-भाषाएँ बोलने वाले भूमि भाग में हिंदी भाषा प्रमुख साहित्यिक भाषा है। राजस्थानी का प्राचीन साहित्य मुख्य रूप में डिंगल अथवा पुरानी साहित्यिक मारवाड़ी में है। पुरानी मारवाड़ी और गुजराती में बहुत कम भेद हैं। भौगोलिक दृष्टि से इसे चार भागों में बाँटा जा सकता है : (क) पश्चिमी राजस्थानी या मारवाड़ी-मेवाड़ी और शेखावटी भी इसी के अंतर्गत आती हैं। यह जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर तथा उदयपुर में बोली जाती है। (ख) पूर्वी मध्य राजस्थानी - जयपुरी तथा उसकी विभिन्न बोलियाँ जैसे अजमेरी और हाड़ौती इसी के अंतर्गत हैं। यह जयपुर, कोटा तथा बुँदी में बोली जाती हैं। (ग) उत्तरपर्वू राजस्थानी-इसके अंतर्गत मारवाड़ी तथा अहीरवाटी बोलियाँ आती हैं। (घ) मालवी- इसका केंद्र मालवा प्रदेश का इंदौर राज्य है।

7. **हिंदी :** इसकी दो मुख्य उपभाषाएँ हैं (क) पूर्वी हिंदी (ख) पश्चिमी हिंदी।

   पूर्वी हिंदी : पूर्वी हिंदी के पश्चिम में पश्चिमी हिंदी तथा पूरब में बिहारी का क्षेत्र है। प्राचीन युग में इस भू-भाग में अर्ध-मागधी, प्राकृत तथा अर्ध-मागधी अपभ्रंश प्रचलित थीं। पूर्वी हिंदी की तीन मुख्य बोलियाँ अवधी (कोसली), बघेली तथा छत्तीसगढ़ी हैं। इनमें अवधी साहित्य-सम्पन्न भाषा है। गोस्वामी तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ रामचरित मानस की रचना इसी में की है। अवध के मुसलमान सूफी कवियों कुतुबन, मंझन तथा जायसी आदि ने अवधी को ही साहित्य रचना का माध्यम बनाया था। पूर्वी हिंदी की उप-भाषाएँ देवनागरी लिपि में लिखी जाती हैं। इसके पश्चिम में शौरसेनी प्राकृत का नया रूप पश्चिमी हिंदी उप-भाषाएँ है।

   पश्चिमी हिंदी : यह मध्य देश की भाषा है। मेरठ और बिजनौर के निकट बोली जाने वाली पश्चिमी हिंदी की खड़ी बोली के रूप से ही वर्तमान साहित्यिक हिंदी तथा उर्दू की उत्पत्ति हुई है। इसका उपयुक्त नाम नागरी हिंदी है। भारत के संविधान में इसको राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन किया गया है। पश्चिमी हिंदी की उप-भाषा के पद पर आसीन किया गया है। पश्चिमी हिंदी की उप-भाषा में बाँगरू, कनौजी तथा बुंदेली सम्मिलित हैं। वर्तमान समय में समस्त हिंदी भाषा प्रदेश का साहित्य खड़ी बोली हिंदी में ही लिख जा रहा है।

8. **बिहारी :** यद्यपि बिहार का संबंध राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक दृष्टि से उत्तर प्रदेश से रहा है, लेकिन उत्पन्न की दृष्टि से यहाँ की उपभाषाएँ बंगाली की सगोत्रीय हैं। बिहारी का क्षेत्र पूर्वी हिंदी तथा बंगला के बीच में हैं। बिहारी की उपभाषाओं में मैथिली, मगही तथा भोजपुरी की गणना की जाती है। बिहारी भाषा नाम ग्रियर्सन ने दिया है। उत्पत्ति की दृष्टि से बिहारी का संबंध मागधी अपभ्रंश से है। बिहारी की उप-भाषाएँ तीन लिपियों में लिखी जाती हैं। छपाई में देवनागरी अक्षर का प्रयोग होता है तथा लिखने में साधारणतया कैथी लिपि का प्रयोग होता है। मैथिली लिपि बंगला लिपि से बहुत अधिक मिलती है। मैथिली में प्राचीन साहित्य मिलता हैं, जबकि भोजपुरी में कबीर के कुछ पुराने पद मिलते हैं।

9. **पहाड़ी भाषाएँ :** हिमालय के दक्षिण में नेपाल से शिमला प्रदेश तक पहाड़ी भाषाएँ बोली जाती है। इसके मुख्य रूप से तीन भेद हैं। (क) पश्चिमी पहाड़ी (ख) मध्य पहाड़ी (ग) पूर्वी पहाड़ी। वर्तमान पहाड़ी भाषाएँ राजस्थानी से बहुत मिलती-जुलती हैं।

10. **उड़िया :** यह प्राचीन उत्कल या अथवा वर्तमान उड़ीसा की भाषा है। बंगला से उसका घनिष्ठ संबंध है। 'उड़िया' का दूसरा रूप 'ओडिया' है। तेरहवीं शताब्दी के एक शिलालेख से विदित होता है कि उस समय तक उड़िया भाषा काफी विकसित हो चुकी थी। उड़िया की लिपि बहुत कठिन है। इसका व्याकरण बांगला से बहुत मिलता जुलता है। बांगला की तरह उड़िया भी मागधी अपभ्रंश से निकली है। मराठों और तेलुगु राजाओं के अधिकार में रहने कारण इस भाषा में मराठी और तेलुगु के शब्द मिलते हैं। उड़िसा में कृष्ण संबंधी साहित्य मिलता है। मुसलमानों और अंग्रेज़ों के कारण इस भाषा में फारसी और अंग्रेजी के शब्द भी मिलते हैं।

11. **बंगला:** बंगला भाषा गंगा के मुहाने और उसके उत्तर पश्चिम के मैदानी भागों में बोली जाती है। इसकी कई उप-शाखाएँ हैं, जिनमें पश्चिमी तथा पूर्वी उप-शाखाएँ मुख्य हैं। पश्चिमी बंगला का केंद्र कोलकाता हैं और पूर्वी बंगला का केंद्र ढाका है, जो आजकल बंगला देश कहलाता है। नवीन यूरोपीय विचाधारा का सर्वप्रथम प्रभाव बंगला भाषा तथा साहित्य पर पड़ा। यूरोपीय विशेषकर अंग्रेजी साहित्य ने बंगला की उन्नति में विशेष योगदान दिया। आधुनिक बंगला साहित्य नव्य आर्य भाषाओं में सर्वोत्कृष्ट है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर और शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय ने बंगला साहित्य के विकास में अपना बहुमूल्य योगदान दिया है। बंगला की अपनी लिपि है, बांगला उच्चारण की अपनी विशेषता है। बंगला में 'अ' का 'ओ' तथा 'स' का 'श' हो जाता है।

12. **असमी :** असमी असाम असमिया प्रदेश की भाषा है। बंगला से इसका घनिष्ठ संबंध है किंतु साहित्य के क्षेत्र में यह बंगला की तरह समृद्ध नहीं है। प्राचीन असमियों में शंकर देव के कृष्ण संबंधी भक्ति रचना मिलती है। यद्यपि इसका व्याकरण बांगला व्याकरण से बहुत भिन्न नहीं है, किंतु दोनों भाषाओं की साहित्य भाषा का विश्लेषण करने पर इनका भेद दिखायी देता है। असमी भाषा ब्राह्मी से उत्पन्न है लेकिन इसमें स्थानीय शैली के रूप में कुछ संशोधन कर लिया गया हैं।

13. **मराठी :** दक्षिण में महाराष्ट्री आपंभ्रश से उत्पन्न मराठी भाषा का क्षेत्र है। इसके अंतर्गत कोंकण की भाषा कोंकणी तथा बस्तर की भाषा हलबी है। अनेक आधुनिक भाषा विज्ञानी कोंकणी को मराठी से स्वतंत्र भाषा मानते हैं। मराठी पुणे के चारों ओर तथा नागपुर के आस-पास के चार जिलों में बोली जाती है। इसके दक्षिण में द्रविड भाषाएँ हैं। मराठी की तीन मुख्य बोलियाँ हैं, जिनमें पूना के निकट बोली जाने वाली मराठी साहित्यिक भाषा है। मराठी देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। नित्य के व्यवहार में मोड़ी लिपि का भी व्यवहार होता है। इस लिपि का आविष्कार महाराणा शिवाजी (1627-80 ई.) के सुप्रसिद्ध मंत्री बालाजी अवाणी ने किया था। मराठी साहित्य काफी प्राचीन है तथा लोकप्रिय है। मराठी साहित्य में सन्त तुकाराम तथा रामदास उत्कृष्ट भक्त कवि थे।

28.3 आधुनिक आर्यभाषाओं का वर्गीकरण

1880 ई. में आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के अध्ययन के आधार पर डॉ. ए.एफ.आर हार्नले ने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया कि भारत में आर्यों का आगमन पंजाब में हुआ और दूसरा आगमन उत्तर हिमालय, दक्षिण में विंध्य प्रदेश, पश्चिम में सरहिंद तथा पूरब में गंगा, यमुना के संगम तक था। डॉ हार्नले के इस सिद्धात को डॉ. ग्रियर्सन ने स्वीकार किया। भाषा तत्व के आधार पर ग्रियर्सन के आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को तीन उप-शाखाओं में विभक्त किया गया। इसमें वे छह भाषा समुदाय को स्वीकार करते हैं। उन्होंने लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया में आधुनिक आर्य भाषाओं का निम्नलिखित वर्गीकरण किया है :

(क) बाहरी उप-शाखा

उत्तरी पश्चिमी समुदाय

1. लहंदा अथवा पश्चिमी पंजाबी
2. सिंधी

दक्षिणी समुदाय

3. मराठी

पूर्वी समुदाय

4. उड़िया
5. बिहारी
6. बांगला
7. असमिया

(ख) मध्य उप-शाखा

बीच का समुदाय

8. पूर्वी हिंदी

(ग) भीतरी उप-शाखा

केंद्रीय अथवा भीतरी समुदाय

9. पश्चिमी हिंदी
10. पंजाबी
11. गुजराती
12. भीली
13. खानदेशी
14. राजस्थानी

पहाड़ी समुदाय

15. पूर्वी पहाड़ी अथवा नेपाली
16. मध्य या केंद्रीय पहाड़ी
17. पश्चिमी पहाड़ी

डॉ. ग्रियर्सन के मतानुसार बाहरी उप-शाखा की भिन्न-भिन्न भाषाओं में उच्चारण तथा व्याकरण में ऐसी समानता पायी जाती है, जो उन्हें भीतरी उप-शाखाओं की भाषा से अलग करती है। जैसे, भीतरी उप-शाखा की भाषाओं में 'स' का उच्चारण बाहरी उप-शाखा की भाषाओं बंगला आदि में 'श' हो जाता है। संज्ञा के रूपांतरण में भी यह भेद पाया जाता है। भीतरी उप-भाषा की भाषाएँ वियोगावस्था में है, किंतु बाहरी उप-शाखा की भाषाएँ संयोगावस्था में है। जैसे, हिंदी में संबंधकारक 'का', 'के', 'की' लगाकर बनाया जाता है। इन चिह्नों का संज्ञा से पृथक अस्तित्व है। बंगला भाषा में यही कारक संज्ञा में 'एर' लगाकर बनता है और यह चिह्न संज्ञा का एक भाग हो जाता है, जैसे 'रामेर' (राम का)। क्रिया के रूपांतरों में भी इस तरह के भेद पाए जाते हैं। हिंदी में तीनों पुरुषों के सर्वनामों के साथ केवल 'मारा' कृदंत रूप का व्यवहार होता है। लेकिन बंगला तथा बाहरी समुदायी की भाषाओं का अधिक रूपों का प्रयोग करना पड़ता है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं को दो या तीन उप-शाखाओं में वर्गीकृत करने के सिद्धांत से सुनीति कुमार चटर्जी सहमत नहीं है। ग्रियर्सन का वर्गीकरण हिंदी की उपभाषाओं को अलग-अलग समुदायों में बाँट देता है। यह तार्किक नहीं है। इस संबंध में उन्होंने पर्याप्त प्रमाण दिया है। चटर्जी जी के आधार पर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

(क) उदीच्य (उत्तरी)

1. सिंधी
2. लहंदा
3. पंजाबी

(ख) प्रतीच्य (पश्चिमी)

4. गुजराती

(ग) मध्य देशीय (बीच का)

5. राजस्थानी
6. पूर्वी हिंदी
7. पश्चिमी हिंदी
8. बिहारी
9. पहाड़ी

(घ) प्राच्य (पूर्वी)

10. उड़िया
11. बंगाली
12. असमी

(च) दक्षिणात्य (दक्षिणी)

13. मराठी

पहाड़ी भाषाओं का मूलाधार चटर्जी पैशाची, दरद या खस को मानते हैं। मध्य काल में ये भाषाएँ राजस्थानी की प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं से बहुत अधिक प्रभावित हो गयी थीं। हबूड़ी या जिप्सी बोलियाँ तथा सिंहली भाषा भी आधुनिक आर्य भाषाओं के अंतर्गत हैं।

इन दोनों वर्गीकरणों में हिंदी की उपभाषाएँ और बोलियाँ अलग-अलग वर्गों में बँट जाती हैं। हिंदी भाषी क्षेत्र में बोलियाँ बहुत हैं, फिर भी औपचारिक स्थितियों में सर्वत्र हिंदी का ही प्रयोग होता है। शिक्षा, प्रशासन वाणिज्य व्यापार विधि आदि क्षेत्रों में राजभाषा हिंदी ही इस क्षेत्र का संपर्क सूत्र है इस कारण इस भूभाग को भाषिक विशेषताओं के आधार पर बाँटना भाषा वैज्ञानिकों को सही नहीं लगता। धीरेंद्र वर्मा ने एक व्यावहारिक सुझाव दिया है, जिससे हिंदी क्षेत्र की अस्मिता बनी रहे। उनका वर्गीकरण इस प्रकार है।

1. उत्तरी - सिंधी, लहंदा, पंजाबी
2. पश्चिमी - गुजराती
3. मध्यदेशीय - राजस्थानी, पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, बिहारी, पहाड़ी की उपभाषाएँ
4. पूर्वी - ओड़िया, बांगला, असमिया
5. दक्षिणी - मराठी

28.4 आधुनिक आर्य भाषाओं की विशेषताएँ

ईशा की पंद्रहवीं शताब्दी तक भारतीय आर्य भाषाएँ आधुनिक काल में पदार्पण कर चुकी थीं। पैशाची, शौरसेनी, महाराष्ट्री एवं मागधी अपभ्रंश भाषाओं ने क्रमशः आधुनिक सिंधी, पंजाबी, हिंदी (ब्रजभाषा, खड़ी बाली) राजस्थानी, गुजराती, मराठी, पूर्वी हिंदी (अवधी आदि) बिहारी, बंगला, उड़िया भाषाओं को जन्म दिया। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा में परिवर्तन और ह्रास की जो क्रिया मध्यकाल के आरंभ में चल पड़ी थी, वह आधुनिक आर्य भाषाओं के रूप में पूरी हुई। प्रारंभ से ही हम देखते आए हैं कि परिवर्तन की गति आर्यावर्त के पूर्वी भाग में सबसे तेज़ रही, लेकिन इसके विपरीत उत्तर पश्चिम प्रदेश में परिवर्तन की गति बहुत धीमी रही। इसके फलस्वरूप भाषा का स्वरूप धीरे-धीरे बदलता रहा। मध्य देश में जहाँ नवीन परिवर्तन होते रहे, वहीं भाषा का प्राचीन रूप भी उसमें सुरक्षित रहा।

मध्य भारतीय आर्य भाषा के प्रारंभ से ही प्रकृति प्रत्यय का ज्ञान धुँधला होने लगा था, जिससे स्वरों के मात्रा काल में अनेक परिवर्तन हुए। आर्य भाषा की प्राचीन आर्य भाषा से तुलना करने पर यह पता चलता है कि व्युत्पत्ति ज्ञान के लोप हो जाने पर नवीन आर्य भाषा में स्वरों के मात्रा काल में बहुत अधिक परिवर्तन हुए। बलात्मक स्वराघात के परिणामस्वरूप वतर्मान भारतीय आर्य-भाषा में स्वरों का लोप देखा जाता है। शब्द की उपधा में बलात्मक स्वराघात होने पर अंतिम दीर्घ स्वर ह्रस्व हो जाता हैं। जैसे कीरत < कीर्ति, रास् < राशि। शब्द के आदि स्वर का लोप भी बलात्मक स्वराघात का परिणाम है। अभ्यन्तर > हि. भीतर, मराठी भीतरी आदि भी बलात्मक स्वराघात के परिणाम हैं।

स्वरों तथा व्यंजनों के उच्चारण में भी आधुनिक भारतीय आर्य भापाओं में नवीनता परिलक्षित होती है। बांगला में 'अ' लुंठित निम्न मध्य पश्च स्वर है। मराठी में 'च', 'ज' का उच्चारण कई जगह 'त्स', 'द्स' हो गया है। पश्चिमी हिंदी और राजस्थानी में 'ऐ' 'औ' अग्र एवं पश्च-निम्न-मध्य ध्वनियाँ हैं। आधुनिक आर्य भाषाओं में परिवर्तन की विशेषता निम्नलिखित रूप में रही है।

प्राकृत के समीकृत संयुक्त व्यंजनों 'क्क', 'क्ख', 'ग्ग', 'ग्घ' इत्यादि में से केवल एक व्यंजन ध्वनि लेकर पूर्ववर्ती ह्रस्व स्वर का दीर्घ करना पंजाबी सिंधी के अतिरक्ति सम्पूर्ण नवीन भारतीय आर्य भाषाओं में दिखाई देता है।

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में प्रमुखतः वही ध्वनियाँ है, जो प्राकृत, अपभ्रंश आदि में थीं, किंतु उनमें कुछ वैयक्तिक विशेपताएँ भी हैं। (क) पंजाबी आदि में उदासीन स्वर 'अ' का प्रयोग होने लगा है। अवधी आदि में अघोष स्वरों का प्रयोग होता है। गुजराती में मर्मर स्वर का विकास हुआ है। प्राकृत, अपभ्रंश में केवल मूल स्वर थे, किंतु अवहट्ट में 'ऐ', 'औ, विकसित हुए। कई आधुनिक भाषाओं में इनका प्रयोग दिखाई देता है, यद्यपि कुछ बोलियों में केवल मूल स्वरों का प्रयोग हो रहा है, संयुक्त स्वरों का प्रयोग नहीं हो रहा है। 'ऋ' का प्रयोग तत्सम शब्दों में है, किंतु बोलने में यह स्वर न रहकर 'र' के साथ 'इ' या 'उ' स्वर का योग रह गया है। उत्तरी भारत में जब इसका उच्चारण किया जाता है जब ध्वनियों में जहाँ तक उष्म ध्वनियों का प्रश्न है, इसमें लिखने के 'स ष श' ध्वनियों का प्रयोग हो रहा है, लेकिन ध्वनियों के उच्चारण में एकरूपता नहीं है। हिंदी में ये ध्वनियों ऊष्म संघर्षी हैं, किंतु मराठी में इनका एक उच्चारण 'त्स' (च) द्ज (ज) जैसा है। विदेशी भाषाओं के प्रभाव के कारण आधुनिक आर्य भाषाओं में अनेक भाषाओं में अनेक नयी ध्वनियाँ आ गयी हैं जैसे क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ऑ आदि। लोक भाषाओं में इसका उच्चारण इस रूप में नहीं हो पा रहा है, किंतु शिक्षित वर्ग इसको बोलने का प्रयास करता है।

जिन शब्दों के उपधा स्वर या अंतिम स्वर को छोड़कर किसी और पर बलात्मक स्वराघात था, उनके अंतिम दीर्घ स्वर पर प्रायः ह्रस्व स्वर हो गए हैं। अंतिम 'अ' स्वर संयुक्त व्यंजन आदि को छोड़कर प्रायः लुप्त हो गया है, जैसे, (राम, अब, आदि)। प्राकृत आदि भाषाओं में जहाँ समीकरण के कारण द्वित्व या दीर्घ व्यंजन हो गए थे, वही आधुनिक भाषाओं में द्वित्त व्यंजन में केवल एक व्यंजन शेप रहा और पूर्ववर्ती स्वरों में क्षतिपूरक दीर्घता आ गयी। जैसे कर्म > कम्म > काम, अप्ट > अट्ठ > आठ। पंजाबी और सिंधी भाषाओं में इसका अपवाद मिलता है। इनमें प्राकृत से मिलते-जुलते रूप चलते हैं।

आधुनिक भारतीय आर्य भापाओं में बलात्मक स्वराघात पाया जाता है। यह वाक्य स्तर पर संगीतात्मक भी है। अपभ्रंश की तुलना में इसमें रूप कम हो गए हैं जिससे भाषा सरल हो गयी है। संस्कृत में कारक के तीनों वचनों में 24 रूप बनते थे, लेकिन प्राकृत में ये रूप घटकर 12 रह गए अपभ्रंश में ये रूप 6 शेप बचे और आगे चलकर आधुनिक भाषाओं में इनका रूप केवल 3 या 4 हो गया। आधुनिक भाषाओं में क्रिया रूपों में भी पर्याप्त कमी हो गयी है।

रचना की दृष्टि से संस्कृत, पाली प्राकृत आदि भाषाएँ योगात्मक थीं। लेकिन अपभ्रंश भाषा से लेकर ये अयोगात्मक हो गयीं। आधुनिक आर्य भाषाएँ पूर्णतः अयोगात्मक हो गयी हैं। नाम रूपों के लिए परसर्गों का प्रयोग होता है लेकिन धातु रूपों के लिए कृदंत और सहायक क्रिया के आधार पर संयुक्त क्रिया का प्रयोग होने लगा। संस्कृत भाषा में तीन वचन थे, लेकिन मध्य कालीन आर्य भाषाओं में दो वचन रह गए। संस्कृत भाषा में तीन लिंग थे, मध्यकालीन आर्य भाषा तथा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में दो ही लिंग शेप बचे (पुल्लिंग स्त्रीलिंग)। संभवतः तिब्बत-बर्मी भाषाओं के प्रभाव के कारण बांगला, उड़िया तथा असमिया में लिंग भेद कम दिखायी देता है। बिहारी नेपाली में इसका प्रयोग कम दिखायी देता है। तीनों लिंगों का प्रयोग केवल गुजराती, मराठी और सिंहली में दिखाई देता है।

आधुनिक आर्य भाषाओं में प्राचीन तथा मध्ययुगीन भाषाओं से बहुत अंतर आया है। शब्द भंडार की दृष्टि से सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पश्तो, तुर्की, अरबी, फारसी, पुर्तगाली तथा अंग्रेजी आदि से कई हजार नए शब्द आए हैं। इससे पूर्व भाषाओं का प्रमुख शब्द भंडार तत्सम, तद्भव और देशज था। मध्ययुगीन भाषाओं की तुलना में आज की भाषा में तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक हो रहा है तथा तद्भव का प्रयोग अपेक्षाकृत कम हो रहा है। इधर पारिभाषिक शब्दावली की कमी को दूर करने के लिए नए शब्दों का निर्माण किया जा रहा है और उसका उपयोग भी किया जा रहा है। अनुकरणात्मक और प्रतिध्वन्यात्मक शब्दों का बहुत प्रयोग होता है।

28.5 हिंदी भाषा क्षेत्र और बोलियों को विभाजन

'हिंदी' शब्द किसी तरह भाषा का नाम बन गया, इसका एक लम्बा इतिहास है। प्राचीन काल में यह देश भारत खंड तथा जम्बू द्वीप के नाम से जाना जाता था। देश के लिए 'हिंदी' और बाद में 'हिंदुस्तान' बाद का विकास है। 'हिंदी' की भाषा के रूप में भाषा के अर्थ में हिंदी के अतिरिक्त हिंदुई, हिंदवी, दक्खिनी, हिंदुस्तानी, भाषा आदि का प्रयोग होता था। इस बारे में आप विस्तार से अगले खंड में पढेंगे।

प्राचीनता की दृष्टि से हिंदी का यह नाम अत्यंत महत्वपूर्ण है। विकास की दृष्टि से यह अत्यंत प्राचीनकाल से हिमालय तथा विंध्य क्षेत्र के बीच की भूमि आर्यावर्त के नाम से प्रसिद्ध है। संस्कृत, पालि, प्राकृत इस मध्य देश के विभिन्न युगों की भाषा थी कार्यक्रम के अनुसार इस प्रदेश में शौरसेनी अपभ्रंश का प्रचार हुआ। शौरसेनी अपभ्रंश ही आगे चलकर हिंदी के रूप में विकसित हुई। इसपर पंजाबी का पर्याप्त प्रभाव है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में हिंदी शब्द का अर्थ है बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, तथा पंजाब एवं हिमाचल प्रदेश के कुछ भागों की भाषा। इस पूरे प्रदेश में उर्दू को छोड़कर सभी भाषाएँ या बोलियाँ हिंदी में समाहित हैं, इस दृष्टि से हिंदी भाषा की पाँच उपभाषाएँ हैं, तथा उनके अंतर्गत 18 बोलियाँ है।

हिंदी भाषा

1. राजस्थान की उपभाषा: — क्षेत्र : राजस्थान

   बालियाँ :
   1. मेवाती
   2. मालवी
   3. हाड़ौली (जयपुरी)
   4. मारवाड़ी (मेवाड़ी)

2. पश्चिमी उपभाषा — क्षेत्र : हरियाणा, उत्तर प्रदेश

   बोलियाँ :
   5. खड़ी बोली
   6. बाँगरु या हरियाणवी
   7. ब्रजभाषा
   8. कन्नौजी
   9. बुंदेली

3. पूर्वी उपभाषा — क्षेत्र : उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश छत्तीसगढ़

   बोलियाँ :
   10. अवधी
   11. बघेली
   12. छत्तीसगढ़ी

मानचित्र-3 : हिंदी भाषी क्षेत्र : हिंदी की बोलियाँ

स्रोत : अम्बा प्रसाद सुमन (1964), हिंदी और उसकी उपभाषाओं का स्वरूप

4. बिहारी उपभाषा क्षेत्र : उत्तर प्रदेश, बिहार

बोलियाँ :
13. भोजपुरी
14. मैथिली
15. मगही

5. पहाड़ी उपभाषा क्षेत्र : हिमाचल प्रदेश उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल

बोलियाँ :
क) पश्चिमी वर्ग
ख) मध्यवर्गी वर्ग :
16. कुमाऊँनी
17. गढ़वाली
18. नेपाली
ग) पूर्वी

हिंदी साहित्य के इतिहास में इन सभी बोलियाँ में प्राप्त साहित्य (जैसे, डिंगल, ब्रज, खड़ी बोली, अवधी, मैथिली आदि) में समाहित हैं। कुछ लोग हिंदी की 18 बोलियों के अतिरिक्त उर्दू को भी हिंदी की अरबी फारसी से प्रभावित शैली मानकर इसे भी हिंदी के अंतर्गत ही रखते हैं। ग्रियर्सन ने अपने 'भाषा सर्वेक्षण' में पश्चिमी और पूर्वी हिंदी को ही वस्तुत: हिंदी माना है। इसी कारण उन्होंने दोनों के साथ हिंदी शब्द का प्रयोग किया है। डॉ. ग्रियर्सन ने अन्य को पहाड़ी, राजस्थानी, बिहारी आदि अन्य नामों से अभिहित किया है जिन्हें वे अलग भाषाएँ या भाषा वर्ग मानते है। इस प्रकार डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से हिंदी के अंतर्गत केवल 8 बोलियाँ है। 5 पश्चिमी हिंदी की और 3 पूर्वी हिंदी की। कुछ विद्वान पश्चिमी हिंदी को ही हिंदी के अंतर्गत मानते हैं। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी भी पश्चिमी हिंदी की 5 बोलियों को ही हिंदी मानने के पक्षधर हैं।

हिंदी प्रदेश की जो विभिन्न बोलियाँ बोली जाती हैं उनका उल्लेख किया जा चुका है। आज की वस्तुस्थिति कें संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि हिंदी प्रदेश की प्रमुख भाषा आज की परिनिष्ठत हिंदी है। इस प्रदेश की बोलियों के वर्ग इस प्रकार हैं :

क) मागधी वर्ग : मैथिली, मगही, भोजपुरी

ख) अर्ध-मागधी वर्ग : अवधी, छत्तीसगढ़ी, बघेली

ग) उत्तरी शौरसेनी वर्ग : गढ़वाली, कुमाऊँनी, हिमाचली

घ) मध्य शौरसेनी वर्ग : खड़ी बोली (हरियाणवी इसी के साथ) ब्रज (कनौजी इसी के साथ), बुंदेली और निमाडी (यद्यपि इसे राजस्थानी के साथ रखा गया है, यह पश्चिमी हिंदी के निकट है)।

च) पश्चिमी शौरसेनी वर्ग : मारवाड़ी (इसकी प्रमुख बोलियाँ बीकानेरी, बागड़ी, शेखावटी, मेवाड़ी आदि हैं।) मेवाती अहीरवाटी (इसमें हड़ौती जयपुरी, अजमेरी आदि बोलियाँ हैं)।

इस प्रकार हिंदी भाषी प्रदेशों को भाषा और बोली की दृष्टि से 5 क्षेत्रों में विभक्त किया गया है और हिंदी के अंतर्गत 18 बोलियाँ हैं। उर्दू को यहाँ अलग स्थान नहीं दिया गया है। ये प्राय: शब्द प्रयोगों की दृष्टि से हिंदी की शैलियाँ हैं।

आधुनिक आर्य भाषाओं की उत्पत्ति के संबंध में सुनीति कुमार चटर्जी का मत ग्रियर्सन से थोड़ा भिन्न है। इनके अनुसार पहाड़ी भाषाओं की उत्पत्ति 'खस अपभ्रंश' से हुई है। उनका यह तर्क है कि उत्तर हिमालय के निवासी किसी समय खस अथवा दरद भाषा-भाषी थे। प्राकृत युग में राजस्थान के निवासी इधर आकर बस गए और उन्होंने यहाँ की बोलियों को प्रभावित किया। इसी के फलस्वरूप पहाड़ी बोलियाँ अस्तित्व में आयीं। इसी प्रकार डॉ. चटर्जी, ग्रियर्सन के भीतरी तथा बाहरी भाषा संबंधी सिद्धांत को भी नहीं मानते। आपने उत्पत्ति की दृष्टि से हिंदी की बोलियों का चार्ट प्रस्तुत किया है। इस चार्ट को आप अगले पृष्ठ में देखेंगे:

हिंदी की बोलियों का विभाजन
नागर अपभ्रंश
शौरसेनी अपभ्रंश
अर्धमागधी अपभ्रंश
राजस्थानी
पश्चिमी हिंदी
पूर्वी हिंदी
पश्चिमी राजस्थानी
जयपुरी राजस्थानी
मेवाड़ी राजस्थानी
बुंदेली
खड़ी बोली
कनौजी
ब्रजभाषा
बाँगरू
हिंदुस्तानी या नागरी हिंदी
अवधी
बघेली
छत्तीसगढ़ी
गुजराती
मारवाड़ी
पश्चिमी मागधी
बिहारी
मैथिली
मगही
भोजपुरी
पहाड़ी
पश्चिमी पहाड़ी
मध्य पहाड़ी
पूर्वी पहाड़ी
क्योंथली
बुलूई
कुमायुँनी
गढ़वाली
नेपाली
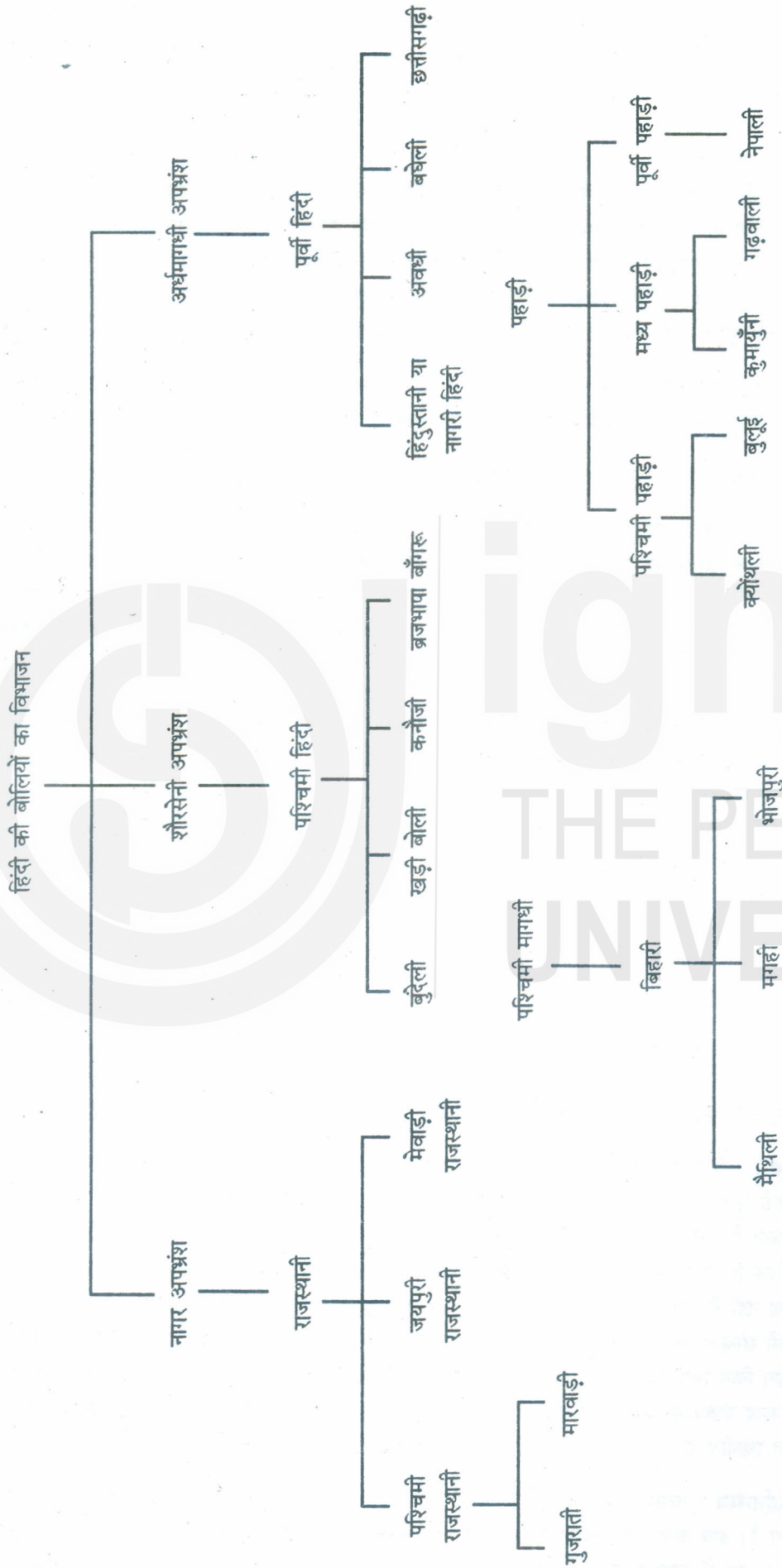
28.5 बोलियों और भाषाओं की विशेषताएँ

भापाओं और बोलियों के निरंतर प्रवाह के कारण भापा का प्रवाह संश्लिप्टावस्था से विश्लिप्टावस्था की ओर चलता रहा। भापा के इस परिवर्तन का कारण वस्तुत: आर्यों के साथ अनार्यों, मुंडा, निपाद, किरात आदि का सम्पर्क तथा सम्मिश्रण था। प्रसिद्ध भापाशास्त्री डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने अखिल भारतीय प्राच्य विद्या परिपद के भापण में यह स्पप्ट कहा था कि अनुलोम-प्रतिलोम विवाह द्वारा प्राचीन भारत में एक तरफ़ विभिन्न जातियों का सम्मिश्रण हो रहा था, वहीं दूसरी तरफ आय तथा अनार्य संस्कृति का भी संगम हो रहा था। इस पारस्परिक आदान-प्रदान के कारण वैदिक भापा में भी परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन के कारण भापा संश्लिप्टावस्था से विश्लिप्टावस्था में आयी। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन काव्यधारा' में अपभ्रंश को पुरानी हिंदी के नाम से अभिहित किया है। राहुल जी का यह कथन इस लिए उपयोगी है कि व्याकरण की दृप्टि से अपभ्रंश संस्कृत की अपेक्षा आधुनिक भापाओं के निकट है। हम पुरानी हिंदी की संकल्पना को अगले खंड में विस्तार से देखेंगे।

आधुनिक आर्य भापाओं की उत्पत्ति के संबंध में पीछे बताया गया है, यहाँ यह विचार करना है कि हिंदी का निर्माण किन तत्वों से मिलकर हुआ है। इन तत्वों पर विचारों करते समय यह जानना आवश्यक है

कि परिवर्तन संबंधी कुछ तत्व ऐसे हैं जो सभी नव्य आर्य भापाओं में समान रूप से मिलते हैं।

अब तक हमने उच्चारण, व्याकरणिक संरचना आदि के संदर्भ में संस्कृत की परंपरा का उल्लेख किया/अब शब्दावली की भी थोड़ी चर्चा कर लें। हिंदी जिन तत्वों से निर्मित हुई उन तत्वों के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रकृतया हिंदी को हम उधार लेने वाली भापा न कहकर रचनात्मक भापा ही कहना उचित समझते हैं। इस विपय में आर्य भापाओं में हिंदी का अपना अलग व्यक्तित्व है। हिंदी जिन सूत्रों से निकल कर आयी उनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

तद्भव : इस संबंध में यह कहा जा सकता है कि हिंदी की दूसरी विशेपता हैं तद्भव शब्दों का प्राचुर्य। प्राकृत वैयाकरणों के अनुसार तद्भव वे शब्द हैं, जो संस्कृत के उन्हीं शब्दों से थोड़ा भिन्न रूप वाले होते हैं। तद्भव का शाब्दिक अर्थ है तद् - उससे, भव - उत्पन्न। यहाँ तद् का तात्पर्य संस्कृत भापा और उसकी शब्दावली से है। हिंदी तथा अन्य नव्य आर्य भापाओं में तद्भव वे शब्द हैं, जो इन भापाओं में मूल संस्कृत से प्राकृत भापा से होते हुए आए हैं। जैसे-हिंदी शब्द आज, काम, काज, आदि शब्द तद्भव हैं। जैसे:

अद्य > अज्ज > आज

कर्म > कम्म > काम

कार्य > कज्ज > काज

वस्तुत: तद्भव शब्द ही हिंदी के मेरुदण्ड हैं। इस संबंध में हिंदी की तुलना बंगला से ही जा सकती है।

तत्सम : हिंदी में स्वाभाविक रूप से तत्मस शब्दों की संख्या कम है। तत्सम से तात्पर्य है, तत् + सम = उसके समान। यहाँ तत् का तात्पर्य संस्कृत से ही है। वस्तुत: तत्सम वे शब्द हैं, जो नव्य भापाओं में संस्कृत से उसी रूप में लिए गए हैं। आधुनिक आर्य भापाओं में बंगला में तत्सम शब्दों की संख्या सबसे अधिक है। हिंदी में तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। इसके अनेक कारण हैं, हिंदी अब केवल बोलचाल की भापा नहीं है और न ही यह प्रादेशिक भापा है, बल्कि राजभापा के रूप में यह संस्कृत वाहिनी भापा है। इसमें संस्कृत शब्दों के प्रयोग से यह लाभ भी है कि प्राय: सभी नव्य आर्य भापाओं में ये समान रूप से प्रयोग किये जाते हैं। तत्सम शब्दों के प्रयोग से यदि हम देखें तो किसी प्रकार की प्रादेशिक बाधा नहीं है। ये शब्द पंजाब से बंगाल तक एक ही रूप में प्रयोग व्यवहार में लाए जा रहे हैं। हिंदी के लेखक ग्राम्य तथा स्थानीय दोपों के कारण संस्कृत शब्दों का प्रयोग ही श्रेयस्कर मानते हैं।

अर्द्धतत्सम : तत्सम शब्दों के साथ ही प्राय: सभी नव्य आर्य भाषाओं के अर्द्धतत्सम शब्दों का भी प्रयोग होता है। अर्ध तत्सम का उन शब्दों से तात्पर्य है, जो तद्भव नहीं है तथा जो तत्सम के अति निकट हैं। प्राकृत युग में भापा के रूप में संस्कृत का अध्ययन अध्यापन आज की तरह चलता रहा था। अतएव प्राकृतों में संस्कृत शब्दों का आना अनिवार्य था। ऐसे शब्दों का प्रयोग जब प्राकृत भापा में किया जाता

था, और वे संयुक्त व्यंजन वाले होते थे, तब प्राकृत के उच्चारण के प्रभाव से उनमें तत्सम की अपेक्षा कुछ न कुछ अंतर आ ही जाता था। यह अंतर उससे सर्वथा भिन्न था, जो विकास क्रम से संस्कृत से प्राकृत तथा प्राकृत के नव्य आर्य भाषाओं में परिणत हुए शब्दों में होता था। दूसरे प्रकार के शब्द तद्भव कहलाए, जैसा कि पहले बताया जा चुका है। अर्धतत्सम शब्दों के विषय में निम्न उदाहरण से आप स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं। संस्कृत तीक्ष्ण > प्राकृत 'तिक्ख' शब्द बना, जो विकास क्रम से हिंदी में 'तीखा' बन गया।

यहाँ संयुक्त व्यंजन 'क्षण' का 'क्ख' रूप में समीकरण प्राकृत के ध्वनि नियमों के सर्वथा अनुकूल था। किंतु एक बार पुनः प्राकृत में 'तीक्ष्ण' शब्द का प्रयोग होने लगा। प्राकृत उच्चारण के कारण इसका शुद्ध रूप में उच्चारण कठिन था, इसलिए स्वर भक्ति अथवा विप्रकर्ष की सहायता से इसका उच्चारण 'तिखिण' होने लगा। यह 'तिखिण' शब्द वस्तुतः अर्धतत्सम शब्द हैं। संस्कृत 'आदर्श' के स्त्रीलिंग रूप 'आदर्शिका' से आदस्सिका' 'आदस्सिआ', 'आअस्सिआ' होते हुए हिंदी में 'आसी' शब्द बनना चाहिए, लेकिन 'आर्शिका' शब्द का पुनः प्रयोग में आने से 'आअंरसिआ' का हिंदी में 'आरसी' शब्द का निर्माण हुआ।

देशीः संस्कृत तथा प्राकृत में अनेक ऐसे शब्द हैं, जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत धातुओं तथा प्रत्ययों से नहीं दी जा सकती। इस प्रकार के शब्द जहाँ संस्कृत में मिलते हैं, वहाँ उनकी वैज्ञानिक व्युत्पत्ति न देकर केवल अनुमान के आधार पर व्याख्या की जाती है। प्राकृत में ऐसे शब्दों का जिनकी व्युत्पत्ति संस्कृत में उपलब्ध नहीं है उन्हें वैयाकरणों ने 'देशी' नाम दिया हैं। अनुकरणमूलक शब्दों को भी भाषावैज्ञानिकों ने इसी श्रेणी में रखा है। इस प्रकार पोट्ट > पेट, गोड्ड > गोड़ आदि शब्द देशी कहे जाते हैं।

आधुनिक भाषा में देशी शब्द किंचित् भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होता है। आज इन शब्दों का अर्थ उनसे लिया जाता है, जो आदिवासी लोगों की भाषाओं तथा बोलियों एवं वैदिक तथा पाणिनीय संस्कृत एवं प्राकृत तथा नव्य आर्य भाषाओं में समय-समय पर आए हैं। ऐसे शब्दों में काल, कला, पुष्प, पूजा, मयूर, कदलि, कम्बल तथा बाण आदि की गणना है हिंदी तथा अन्य नव्य आर्य भाषाओं में सैकड़ों देशी शब्द प्राकृत से होकर आए हैं। इनमें से अनेक शब्द प्राचीन शब्द तथा मध्य भारतीय भाषाओं में प्रचलित थे और समय की प्रगति के साथ ये हिंदी में पाए जाते हैं।

विदेशी शब्द : वैदिक युग से लेकर आज तक निरंतर हमारी भाषा में नए भावों तथा विचारों को प्रकट करने के लिए विदेशी शब्द समाविष्ट होते रहे हैं। ये शब्द हमारे प्राचीन इतिहास पर भी पर्याप्त प्रकाश डालते रहते हैं। जैसे, संस्कृत में 'लोहा' शब्द की उत्पत्ति 'रोध' संस्कृत में 'रुधिर' से हुई है। समय के साथ रोध, लोध > लोह में परिवर्तित हो गया। इसी प्रकार हिंदी 'मन' (तोल) की उत्पत्ति 'मिनी' शब्द से हुई है। मिस्र का मुद्रा शब्द हिंदी में मुँदरी हो गया। तुर्की शब्द जैसे, 'बाग्दीर' हिंदी में बहादुर बन गया। डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी के अनुसार हिंदी में सत्तर अस्सी शब्द तुर्की भाषा से आए हैं। अरवी भाषाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव भारतीय भाषाओं पर बहुत कम पड़ा। फारसी का प्रचार यहाँ प्रमुख रूप से रहा। फारसी का 'ख़ुदा' संस्कृत का 'स्वधा' काफी प्रचालित रहा। अरवी शब्द फारसी भाषा से ही आए।

अरबी फारसी के बाद पुर्तगाली शब्द भी आधुनिक आर्य भाषाओं में विशेषतः मराठी, गुजराती, बंगाली तथा उड़िया में आए। बंगला में पुर्तगाली शब्दों का प्रयोग सौ से अधिक है। हिंदी में इसके निम्नलिखित शब्द दिखायी देते हैं। जैसे, अल्मारी, काफी, काजू, गमला, गोभी, गोदाम, तौलिया, बाल्टी, बिस्कुट, बटन, मेज, संतरा आदि। भारतीय आर्य भाषाओं में डच तथा फ्रेंच भाषा का प्रयोग मिलता है, जैसे कर्तूस, कूपन, अंग्रेज।

अंग्रेजी ने आधुनिक आर्य भाषाओं को इतना प्रभावित किया है कि अंग्रेजी के भारत छोड़ देने के बाद भी इससे बचना कठिन हो रहा है। इसने हमारी प्रादेशिक भाषाओं को बुरी तरह दबाया है। आज अंग्रेजी के अनेक शब्द हमारे दैनिक जीवन में उपयोग किए जा रहे हैं। इसमें कुछ इस प्रकार हैं। लालटेन, माचिस, सीमेंट, हारमोनियम, सिगरेट, जज, रसीद, राशन कार्ड, लाइब्रेरी, डाक्टर, टिकट, फोटो मशीन, लेक्चर, हाकी, साइंस आदि।

हिंदी में अन्य प्रादेशिक भाषाओं से भी अनेक शब्द आए हैं। इधर जब से हिंदी राष्ट्रभाषा घोषित हुई है, तब से प्रादेशिक भाषाओं के शब्दों के लिए हिंदी ने अपना द्वार उन्मुक्त रूप से खोल दिया है। हिंदी में अन्य अन्य प्रादेशिक भाषाओं से आए हुए शब्द निम्न हैं।

पंजाबी - सिक्ख

गुजराती - गरबा, हड़ताल

मराठी - बाड़ पटेल, देशमुख

बंगला - उपन्यास, गल्प, कविराज, रसगुल्ला, सन्देश, चमचम, गमछा, छाता आदि।

हिंदी के विभिन्न तत्वों के संबंध में विचार करते समय यह बात सदैव स्मरण करना चाहिए कि पालि की तरह हिंदी भी समन्वयात्मक भाषा (composite Language) है। हिंदी में आज भी अनेक ऐसे शब्द हैं, जिनमें संस्कृत 'अ', 'इ' में परिवर्तन हो जाती है। संभवत: इस पर राजस्थानी का प्रभाव है। जैसे सं- गण > हिंदी गिनना। संस्कृत हरिण > हिंदी हिरण। राजस्थानी में आदि 'अ' का परिवर्तन 'इ' में हो जाता है। जैसे, चमकना > चिमकणा, पण > पिण आदि।

पूर्वी हिंदी तथा भोजपुरी का बहुत कम प्रभाव आधुनिक हिंदी पर है। नागरी हिंदी में मूर्धन्य उच्चारण वाले शब्द रूपों पर पूर्वी हिंदी तथा भोजपुरी का प्रभाव है। जैसे - पश्चिम में 'कृत' तथा 'मृत' के रूप में 'किअ' (किय) तथा 'मुअ' रूप मिलते हैं।

हिंदी की बोलियों की विशेषताएँ बहुत हैं, लेकिन कुछ प्रमुख बोलियाँ है, जिनकी विशेषता इस प्रकार है।

भौगोलिक दृष्टि से हिंदी का क्षेत्र उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक फैला हुआ है। ग्रियर्सन ने इस समस्या भू-भाग को पश्चिमी तथा पूर्वी हिंदी क्षेत्रों में विभाजित किया है। 1. हिंदोस्तानी, 2. बाँगरू, 3. ब्रजभाषा, 4. कनौजी, 5. बुंदेली। इसी प्रकार पूर्वी हिंदी के अंतर्गत 1. अवधी 2. बघेली तथा छत्तीसगढ़ी बोलियाँ आती है। प्रसिद्ध भाषा शास्त्री जार्ज ग्रियर्सन ने राजस्थानी एवं बिहार की मैथिली, मगही एवं भोजपुरी बोलियों को हिंदी क्षेत्र के बाहर माना है। इस प्रकार ब्रजभाषा एवं अवधी दो प्रमुख बोलियाँ हिंदी क्षेत्र की हैं।

अवधी: अवधी की उत्पत्ति अर्धमागधी की बोलचाल अपभ्रंश से हुई है। पूर्वी हिंदी की सबसे महत्वपूर्ण बोली अवधी है। यह हरदोई, खीरी तथा फैजाबाद के कुछ भाग में नहीं बोली जाती, और अवध के बाहर फतेरपुर, इलाहाबाद, जौनपुर (केराकत तहसील छोड़कर) तथा मिर्जापुर के पश्चिमी भाग में बोली जाती है। इसका अन्य नाम कोशली भी है। लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया में इसका एक और नाम बैसवाड़ी भी है। अवधी में 'ला' वाले रूपों का सर्वथा अभाव है। अवधी में भूतकाल में 'अल', 'इल' प्रत्यय का अभाव है। अवधी में अपादान का अनुसर्ग से है। इसमें बुंदेली का अधिक सम्मिश्रण है। जैसे उइ मनई के दुइ लाला रहैं।

अवधी का क्षेत्र पश्चिमी हिंदी तथा बिहारी के बीच का है। संज्ञा पद के तीनों रूपों लघु (ह्रस्व) दीर्घ तथा दीर्घतर में से पश्चिमी हिंदी (खड़ी बोली) आकारांत दीर्घ घोड़ा तथा अवधी एवं बिहारी में घोड़, घोड़ा, घोड़वा रूप मिलते हैं। संज्ञा तथा विशेषण के लिंग के संबंध में अवधी के नियम ढीले हैं। व्यंजनान्त संज्ञा पदों में कर्ता एक वचन के रूप में अवधी में 'उ' लगता है। जैसे - घरु, मनु, बनु, आदि अनुसर्गों के संबंध में अवधी और बिहारी में समानता है। कर्म सम्प्रदान के अनुसर्ग अवधी में 'का' के रूप लगता है। अवधी में सर्वनाम तोर, मोर है, जो पश्चिमी हिंदी में 'तेरा' 'मेरा' हो जाता है। इसी प्रकार अवधी 'हमार' का तिर्यक रूप 'हमरे' हो जाता है। वर्तमान काल की सहायक क्रिया के रूप अवधी में 'अहै', बाटै बाट् मिलता है। अवधी के भूतकाल रूप में 'इसि' 'इस' प्रत्यय लगता है। जैसे - कहिसि, कहिस् आदि।

अवधी में प्रचुर साहित्य रचना हुई है। प्रेममार्गी सूफ़ी कवियों कुतुबन, मंझन, जायसी नूरमुहम्मद, उस्मान ने इसमें रचना की है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामचिरत मानस की रचना कर अवधी को अलंकृत किया है। वर्तमान में इसमें साहित्य रचना हो रही है, जिसमें वंशीधर मिश्र, रमई काका प्रमुख हैं।

ब्रजभाषा: यह ब्रजमंडल की भाषा है। ब्रज मंडल का क्षेत्र मोटे तौर पर आधुनिक मथुरा जिला है। यदि मथुरा को केंद्र मान लिया जाए जो दक्षिण में आगरा, भरतपुर के अधिकांश भाग, धौलपुर, करौली, ग्वालियर के पश्चिमी भाग तथा जयपुर के पूर्वी भाग में यह बोली जाती है। उत्तर में यह गुड़गाँव के पूर्वी भाग में बोली जाती है। उत्तर पूरब के दो आबे में यह बुलन्दशहर, अलीगढ, एटा, मैनपुरी, तथा गंगा पार के बंदायूँ, बरेली तथा नैनीताल की तराई में बोली जाती है। मथुरा, अलीगढ तथा पश्चिमी आगरे की ब्रजभाषा आदर्श है।

ग्रियर्सन के अनुसार हिंदोस्तानी की अपेक्षा ब्रजभाषा पाश्चमी हिंदी की श्रेष्ठतर प्रतिनिधि है। व्याकरण संबंधी विशेषता की द्रष्टि से इसका हिंदोस्तानी से अधिक महत्व है। साहित्यिक ब्रज भाषा में कभी–कभी नपुंसक लिंग भी मिलता है। यही इसके प्राचीनता का द्योतक है। साहित्यिक ब्रजभाषा की अपेक्षा ग्रमीण ब्रजभापा में नपुंसक का रूप ही अधिक प्रचलित है। जैसे– सोने का नपुंसक रूप सोनों ही ग्रामीण ब्रजभाषा में प्रचलित है। ब्रचभापा में हिंदी 'आ' प्रत्यय के बदले 'औ' प्रत्यय ही प्रयुक्त होता है। हिंदी की तरह की इनमें तिर्यक एकवचन एंव कर्ता बहुवचन के रूप 'ए' जोडकर सम्पन्न होते हैं। ब्रज भाषा के सहायक क्रिया के वर्तमान काल के रूप प्रायः हिंदी के रूपों के सम्मान है। वर्तमान कृदन्तीय के कर्तृवाच्य के रूप 'तु' अथवा 'त' प्रत्ययान्त होते हैं। जैसे– मारतु या मारत जबकि हिंदी में मसके लिए 'ता' प्रयुक्त होता है, जैसे– मारता

ब्रजभाषा में भविष्यतृ काल का रूप साधारण वर्तमान के रूपों में 'गौ' जोडकर बनते है। जैसे, मारो – गौ (मारूँगा)। किंतु यहॉ प्रायः धातु में 'इह' अथवा 'एह' प्रत्यय जोडकर भविष्यत के रूप बनते हैं। जैसे, मारि– हौं (मारूँगा) यह रूप सीधे संस्कृत से ब्रजभाषा में आया हे। जैसे –सं. मारिस्यामि > प्रा. मारिस्सामि, मारिहामि, मारि हौं, ब्रजभाषा, मारि हौ। इसके अतिरिक्त बघेली, कनौजी, बुंदेली आदि हिंदी बोलियाँ है, जिनमें साहित्य रचना बहुत कम है तथा इनका कोई महत्वपूर्ण व्याकरण भी नहीं है। लोकगीतों में इनकी रचना मिलती है, जिनका साहित्यिक महत्व नहीं हैं

28.7 सारांश

इस इकाई में आधुनिक आर्य भाषाओं का विस्तृत विवेचन किया गया है। इसमें आप आधुनिक आर्य भाषाओं हिंदी, बांगला, असमिया, पंजाबी, उड़िया, बिहारी, आदि भाषाओं का विकास किस तरह हुआ, इसका विस्तृत अध्ययन है। इसमें भारतीय भाषाओं का परिचय भी दिया गया है। इसमें आप आधुनिक आर्य भाषाओं का वर्गीकरण भी पाएँगे, जिसे प्रमुख भाषा शास्त्रियों ने दिया है। व्याकरण किसी भी भाषा की विशेषता है, व्याकरण के बिना किसी भी भाषा का महत्व नहीं होता, इसे ध्यान में रखते हुए आधुनिक आर्य भाषाओं की विशेषता दी गयी है। हिंदी साहित्य का भंडार बहुत वडा है, उसका व्याकरण पक्ष भी महत्वपूर्ण है, इसलिए हिंदी भाषा क्षेत्र को निर्धारित करते हुए बोलियों का विभाजन किया गया है। हिंदी की बोलियाँ काफी हैं, लेकिन व्यवहार में और भाषाशास्त्र के नियमों के अंतर्गत कुछ ही बोलियाँ आती हैं, इसे ध्यान में रखते हुए प्रमुख बोलियों का परिचय और उनकी विशेपताओं को बताया गया है।

28.8 अभ्यास प्रश्न

1 आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिए। (500 शब्द)

2 प्रमुख भाषाशास्त्रियों ने आधुनिक आर्य भाषा का वर्गीकरण किया हैं, उन वर्गीकरणों को बताइए। (500 शब्द)

3. हिंदी की बोलियों का वर्गीकरण कीजिए।

4 बोली और भाषा को परिभाषित करते हुए, इनकी विशेषताएँ बताइए। (100 शब्द)

संदर्भ ग्रथ

उदय नारायण तिवारी : हिंदी भाषा का उद्भव और विकास

धीरेंद्र वर्मा : हिंदी भाषा का इतिहास

रामविलास शर्मा : भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी

भोलानाथ तिवारी : भाषा–विज्ञान (तीसरे अध्याय 'संसार की भाषाएँ और उनका वर्गीकरण' के अंतर्गत भारोपीय के परिच्छेद)

देवेन्द्र नाथ शर्मा: भाषाविज्ञान की भूमिका (अध्याय - संसार के भाषा परिवार)

देवदत्त कौशिक : भाषाविज्ञान (संसार के विविध भाषा परिवार)

सतीश कुमार रोहरा : भाषा एवं हिंदी भाषा (अध्याय 4 भारोपीय परिवार एवं आर्य भाषाएँ) हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास (पृष्ठ 260 से 266 तक)

सुनीति कुमार चटर्जी : भारतीय आर्य भाषा और हिंदी

भोलानाथ तिवारी : हिंदी भाषा

बाबूराम सक्सेना: भाषा विज्ञान

नामवर सिंह : हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योगदान

रविंद्रनाथ श्रीवास्तव : हिंदी भाषा का समाजशास्त्र